नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 12
जनवरी 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

चुनावी राजनीति का घिनौना नजारा

● सम्पादक

देश की चुनावी राजनीति में इन दिनों पैंतरापलट, उठापटक और जोड़-तोड़ की बहार आई हुई है। आखिर जब चुनाव का मौसम दस्तक दे रहा हो तो बहार क्यों रूठी रहे? अगला लोकसभा चुनाव अठारह महीने भी दूर नहीं है। मध्यप्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश जैसे बड़े राज्यों सहित चार राज्यों के विधानसभा चुनाव सिर पर आ धमके हैं और इस साल कुल दस राज्यों में चुनाव होने हैं ऐसे में भला कौन सी निगोड़ी चुनावी पतुरिया होगी जो इस मौसम को यूं ही सिर पर से गुजर जाने देगी? और जब येन-केन प्रकारेण चुनाव जीतना और देशी-विदेशी पूंजीपतियों की खिदमत करना ही इस लोकतंत्र की इब्तिदा और इंतिहा हो तो फिर कैसा उसूल, काहे की शरम? अपनी-अपनी चुनरिया हवा में लहराते, नंग-धड़ंग एक दूसरे पर मैला उछालते हुए सभी संसदीय पतुरियां बसंत बहार के मजे लूट रही हैं।

कैसा अद्भुत नजारा है एक तरफ 'गुजरात प्रयोग' की सफलता से बौराई केसरिया पलटन की हुंकारें गूंज रही हैं तो दूसरी तरफ खिसियाए कांग्रेसी हैं जो अपनी धर्मनिरपेक्षता की फटी पिपहरी से "सर्वधर्म समभाव" की बेसुरी धुन बजाते हुए बिछुड़े यारों को रिझाने की कोशिश कर रहे हैं। नरेन्द्र मोदी, प्रवीण तोगड़िया जैसे 'हिन्दुत्ववादी' अगिया बैतालों द्वारा पूरे देश को गुजरात बना देने 'हिन्दुत्व' के विरोधियों से निपटने की धमकियों के जवाब में दिग्विजय सिंह और अजीत जोगी जैसे कांग्रेसी क्षत्रप 'रामायण मेला' आयोजित करके 'उदारवादी' असली हिन्दू चेहरा निखार रहे हैं। 'हिन्दुत्ववादी' ब्रिगेड गुजरात की तर्ज पर खतरनाक बंटवारा करके अगले चुनाव जीतना चाहती है, यह अब बिल्कुल साफ हो चुका है पर कांग्रेसी खेमे में अभी भगदड़ मची हुई है। मुख्यमंत्री बदले जा रहे हैं, प्रदेशों के प्रभारी बदले जा रहे हैं, तो कहीं अन्दरूनी असंतोष को दबाने के लिए दो-दो उपमुख्यमंत्री बनाये जा रहे हैं।

सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी का दर्जा गुजरात में चूर होनेके बाद 'एकला चलो रे' की रणनीति को बाई-बाई करके अब कांग्रेस हर जगह अगले चुनावी भाई-बन्दों को पटाने में जुटी हुई है। आलम यह है कि बोरों और तक़ियों-गद्दों में भरकर नोटों की गड्डियां रखने के आरोप में पकड़े गये पं. सुखराम से भी चोंच लड़ाने में कांग्रेसियों को शर्म नहीं आ रही है। सुखराम की हिमाचल विकास कांग्रेस के साथ चुनावी समझौते के लिए कांग्रेसियों की सौदेबाजी जारी है। उधर महाराष्ट्र में पुराने कांग्रेसी क्षत्रप शरद पवार के साथ रिश्तों में पैदा हुई खटास दूर होने की उम्मीद भी पैदा हो गई हैं। पवार भी मौके की नजाकत को ताड़ते हुए सोनिया गांधी के विदेशी मूल के मुद्दे को टाटा कहने का मूड बनाते दिख रहे हैं। यह खबर भी सुर्खियों में आ चुकी है कि यू.पी. में मायावती को पटखनी देने के लिए कांग्रेस अब पूरे दिल से मुलायम का साथ देने का मन बना रही है। इतना ही नहीं एक समय मुलायम के धुर विरोधी कल्याण सिंह भी पुरानी दुश्मनी भूलकर मुलायम को गुलदस्ते भेंट कर रहे हैं।

उधर देश के दक्षिणी हिस्से में भी चुनावी मौसम की आहट महसूस कर गिरगिट रंग बदलने लगे हैं। तमिलनाडु की चुनावी सियायत का यह जाना-पहचाना किस्सा है कि द्रमुक और अन्नाद्रमुक केन्द्र की राजनीति में कब किससे गांठ जोड़ेंगी, कब किसको ठेंगा दिखा देंगी, इसे अनुभवी से अनुभवी चुनावी ज्योतिषी भी नहीं बता सकते। हालांकि जयललिता राजग से अब भी रूठी हुई हैं, पर अचानक करुणानिधि का मूड कुछ बदला हुआ नजर आ रहा है। राजग सरकार को पिछले साढ़े तीन साल से थूनी लगाये रहने और उसके सारे कुकर्मों में भागीदार रहने के बाद अचानक उनके दिल ने कहा कि 'उदारीकरण' की नीतियां संविधान की भावना के खिलाफ हैं। लगता है करुणानिधि का दिल राजग से कुट्टी करना चाह रहा है!

चुनावी मौसम आने की खबर से और बिहार की सियासी फिजां में चुनावी रंग न उड़े यह भला कैसे हो सकता है! लालू के सारे विरोधी अपने-अपने दांव-घात में एक दूसरे का कान चबा रहे हैं। राजग सरकार में भागीदार समता पार्टी बिहार में भाजपा के साथ मिलकर चुनाव लड़ेगी या नहीं, यह अभी तय नहीं हुआ है। नीतीश कुमार पार्टी के भीतरी बवाल को शांत करने में फिलहाल कामयाब हो चुके हैं पर बवाल कभी भी दुबारा उठ सकता है। रामविलास पासवान राजग से नाता तोड़ने के बाद कभी लालू के करीब जाते हैं तो कभी हिचक जाते हैं। मामला अभी ठोस नहीं बन पा रहा है। तरलता हावी है।

सबसे हास्यास्पद हाल बिचारी संसदीय वामपंथी पतुरियाओं का है। साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ मेहनतकश जनता को ललकारने, गोलबंद और संगठित करने की हिम्मत खो चुके ये बिचारे धर्मनिरपेक्ष अब भी उद्दाम आशावाद के साथ कांग्रेस को मिलाकर कोई धर्मनिरपेक्ष टांका भिड़ाने की जुगत में लगे हुए हैं। जत्थेदार कामरेड हरिकिशन सिंह सुरजीत आजकल धर्मनिरपेक्ष मिलन कराने में बड़े बिज़ी हैं। अगले लोकसभा चुनाव और नई सरकार बनने तक उनकी यह मसरूफियत बरकरार रहेगी। इसके बाद शायद थोड़ा सुस्ताने का मन बनायें।

तो यह है नज्जारा फिलहाल चुनावी सियायत का! सारी हिकमत, सारी जोड़तोड़-तीन तिकड़म बस जिताऊ चुनावी गठजोड़ कायम करने के लिए! सारी मशक्कत जाति-धर्म क्षेत्र के आधार पर कारगर चुनावी गोटी फिट कराने के लिए! गरीबी-महंगाई-बेकारी इन सब मुद्दों की कभी-कभार चर्चा हो

(पेज 5 पर जारी)

हाड़-तोड़ मेहनत के बाद भी कनाडा में मज़दूरों का गुजारा मुश्किल

(कार्यालय प्रतिनिधि)

विकसित देशों को अक्सर पूंजीवाद के स्वर्ग के रूप में पेश किया जाता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद एक समय ऐसा था जब विकसित पूंजीवादी देशों के हुक्मरान अपने देश के मजदूरों को कुछ रियायतें देने पर मजबूर हुए जिससे मजदूरों का जीवन-स्तर काफी ऊंचा उठा। कल्याणकारी राज्य की इन बरकतों ने वहां के मजदूरों को सुविधापरस्त बना दिया। इन सुविधाओं में खोये यहां के मजदूर वर्ग ने पूंजीवाद के खिलाफ अपनी लड़ाई त्याग दी, जिसकी सजा पूंजीपति वर्ग आज उसे दे रहा है। पूंजी के वैश्वीकरण के नये दौर में आज दुनिया भर के पूंजीपतियों ने मजदूर वर्ग पर चौतरफा हमला बोल दिया है। इस बार इस हमले की चपेट में विकसित देशों का मजदूर वर्ग भी आ गया है। पिछले दिनों 'पॉलिसी रिसर्च नेटवर्क' नामक एक संस्था ने कनाडा के मजदूरों पर एक सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण से यह बात सामने आई है कि कनाडा के हर छह नागरिकों में से एक गरीब है जो सख्त मेहनत के बावजूद अपने परिवार को पेट भर भोजन नहीं दे सकता। सर्वेक्षण के मुताबिक कनाडा के लगभग 20 लाख लोग प्रति घंटा 10 डॉलर से भी कम कमा रहे हैं। ये लोग होटलों, परचून की दुकानों तथा ऐसी ही अन्य जगहों पर काम करते हैं।

कनाडा के लोगों को इन दिनों आर्थिक मंदी का खामियाजा भुगतना पड़ रहा है। 1930 की महामंदी के बाद यह पहली बार है कि कनाडा की आर्थिक हालत इस कदर बिगड़ी है। जिन लोगों की प्रति घंटा 10 डॉलर से कम आमदनी है। उनकी मासिक कमाई उन्हें अपनी सभी जरुरतें पूरा कर पाने के लायक नहीं बनाती, भले ही वह सारा दिन सख्त मेहनत करते हैं। इसके बावजूद उनके खर्च ही पूरे नहीं हो पाते, बचत का तो सवाल ही नहीं है।

इस हालात का सामना कर रहे ज्यादातर मज़दूर आण्टेरियो तथ क्यूबेक प्रान्तों में रहते हैं। सर्वेक्षण के मुताबिक "यह बड़ी विडंबनापूर्ण स्थिति है। नई सदी के शुरु में हम फिर से मूल मुद्दे पर पहुंच गए हैं।"

कम तनख्वाह पर काम करने वाले मज़दूरों में ज्यादातर पढ़ी-लिखी महिलाएं हैं। इन महिलाओं के पास माध्यमिक स्कूलों की डिग्रियां तथा डिप्लोमे हैं। इनमें से ज्यादातर मज़दूरों की नौकरी कच्ची है। घर-परिवार का गुजारा करने के लिए उन्हें एक ही समय दो-दो तीन-तीन नौकरियां करनी पड़ रही हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही अपना ज्यादा से ज्यादा समय नौकरी पर खर्च करना पड़ रहा है।

उक्त सर्वेक्षण में जो स्थिति सामने आई है, कमोबेश ऐसी ही स्थिति विकसित देशों के मज़दूरों की है। आने वाले समय में विकसित देशों के मज़दूरों के हालात और भी खराब होंगे। और यही हालत फिर से विकसित देशों के मज़दूरों के पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ाई के अग्रिम मोर्चे पर ले आयेगी। विकसित देशों के मज़दूरों की हालत को देखकर मज़दूरों को एक बात गांठ बांध लेनी चाहिये कि पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर अपनी लड़ाइयों से मज़दूर वर्ग जो भी सुख-सुविधाएं हासिल करता है वह वक्ती ही होती है। अगर उत्पादन के साधनों तथा राजकाज पर पूंजीपति वर्ग का कब्जा बरकार रहेगा तो वह समय आने पर फिर मज़दूरों से सभी सुविधाएं छीन लेगा। जब तक पूंजीवाद है, मज़दूर वर्ग कभी भी चैन की सांस नहीं ले सकेगा। पूंजीवाद को खत्म कर समाजवाद के निर्माण में ही मज़दूर वर्ग की मुक्ति है।

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

स्त्री-समाज की दोहरी गुलाम

मैं इस समाज की दोहरी गुलाम हूं। एक तो फैक्ट्री में मालिक की गुलामी और दूसरी घर में पति की। मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरा मालिक जितना उत्पीड़ित करता है उससे कई गुना अधिक मेरा पति मुझे परेशान करता है, दबाता है। रोज मैं पांच बजे उठती हूं, बर्तन मांजती हूं फिर चाय बनाकर उसे देती हूं। उस वक्त तक वह सोया रहता है उसके बाद बच्चों का कपड़ा धोती हूं। फिर खाना बनाती हूं। इसके बाद पति उठता है, बीड़ी सुलगाता है, लैट्रिन जाता है। फिर आकर टी.वी. खोलकर बैठ जाता है। फैक्ट्री के लिए मैं आठ बजे निकल जाती हूं क्योंकि फैक्ट्री पांच किलोमीटर दूर है, जहां पैदल ही जाती हूं। नौ से नौ-मतलब बारह घंटे का काम चलता है। फिर मैं रात दस बजे घर आती हूं। लड़की दूसरे के घर रहती है। आने के बाद उसको लाती हूं। सुबह का पड़ा बर्तन धोकर खाना बनाती हूं। इस तरह बनाते -खाते रात के बारह बज जाते हैं। फिर सुबह का वही...।

मेरा पति एक दुकान पर काम करता है। दस बजे जाता है, सात बजे आ जाता है। इसके बावजूद वह आकर पड़ा रहता है या टी.वी.देखता है। वैसे तो मेरी कभी हिम्मत नहीं होती है यह कहने की कि कुछ कर क्यों नहीं लिये। परन्तु कभी मैं अगर आलस कर गयी और आंख लग गयी तो वह रात-बिरात उठता है और जगाकर कहता है 'चल बना'। अगर मैं उठने में लेट करती तो एक लात जमा देता और फूहड़-फूहड़ गालियां देता हैं इसी तरह कभी बच्चों के लिए तो कभी किसी से बात करने के बहाने पीटता गाली देता हैं कहता है कि खाना नहीं बनायेगी तो लाट साहब बनेगी। जबकि सारा कुछ मैं ही करती हूं।

'बिगुल' के साथियों से मेरा यही कहना है कि मालिकों के खिलाफ तो लड़ना ही है इससे कौन मुकरता है। लेकिन हम लड़े कैसे जब घर में ही एक कारिन्दा बैठा है। सामंत के रूप में पूरे समाज में बैठा है। जो हम स्त्रियों पर अत्याचार करता है, बेइज्जत करता है। अत: इसके खिलाफ भी कुछ किया जाय। जिसमें मैं साथ रहूंगी।

नीलम, नोएडा

आखिर कैसे करें संघर्ष? मार्गदर्शन करें

मैं, ईस्टर इण्डस्ट्रीज लि., खटीमा, ऊधमसिंहनगर का एक श्रमिक हूं। मेरी फैक्ट्री की स्थिति लगातार खराब होती जा रही है। एक समय में यहां 535 नियमित कार्य करते थे। एक वर्ष पूर्व तक 454 श्रमिक थे। लेकिन पत्र लिखने के समय 392 श्रमिक बचे हैं। यह संख्या लगातार कम होती जा रही है। प्रबन्धन का मनमाना दबाव हम पर लगातार बढ़ता जा रहा है।

हुआ यह कि एक वर्ष पूर्व (10 दिसम्बर'01) बोस प्रतिशत बोनस की मांग पर हमारी फैक्ट्री में हड़ताल हो गयी। यहां की दो यूनियनों में से मुख्य यूनियन ईस्टर इण्डिया इम्पलाइज यूनियन के आह्वान पर हम श्रमिक हड़ताल पर चले गये। दूसरी यूनियन मैनेजमेण्ट के साथ खड़ी हो गयी और कुछ श्रमिक काम पर चले गये। लगभग डेढ़ माह के आन्दोलन के दौरान लगभग आधे श्रमिक टूट कर अन्दर जा चुके थे। एक क्रान्तिकारी संगठन से जुड़े और एकता के लिए बड़ी-बड़ी बातें करने वाले साथी तक हड़ताल में टूटकर अन्दर चले गये थे। अन्ततः हमें पराजय का सामना करना पड़ा। यूनियन के प्रमुख लोगों सहित 28 साथी निलम्बित हो गये और सभी विवादित मामले श्रम न्यायालय में डाल दिये गये। तबसे हमारी लड़ाई न्यायालय तक सिमट कर रह गयी है।

बोनस के मुद्दे पर हड़ताल करने के प्रश्न पर मतभेद होने के बावजूद मैं यूनियन के फैसले में शामिल हुआ। लेकिन हमारी आपसी फूट के कारण हमें नाकामयाबी मिली। किसी भी लड़ाई में हार-जीत होती रहती है, लेकिन मामला विकट तब होता है जब उसका मुकाबला ठीक से न किया जाये। मैं यह पत्र उसी मुख्य बात के लिए लिख रहा हूं। आन्दोलन के बाद से प्रबन्धन को छंटनी करने और हम पर दबाव बनाने का रास्ता खुल गया। कम्पनी में पहले से ही जारी वी. आर.एस. के तहत अब जबरिया निकालने की कार्रवाई चल रही है। कम्पनी ने पिछले एक वर्ष के दौरान 28 निलम्बित श्रमिकों के निष्कासन के साथ ही तीन और श्रमिक निष्कासित हुए और 31 श्रमिकों को वी.आर.एस. देकर छुट्टी कर दिया गया। मैनेजमेण्ट के लोग आये दिन श्रमिकों का एक विभाग से दूसरे विभाग ट्रांसफर कर - फिल्म प्लाण्ट से चिप्स प्लाण्ट तो चिप्स से यार्न या यूटीलिटी या फिर कहीं और। कामों का बोझ काफी ज्यादा बढ़ता गया है। प्रोडक्शन में लगे श्रमिक से लोडिंग-अनलोडिंग का काम करवाया जा रहा है। इनका विरोध करने वाले को बाहर का रास्ता दिखाया जा रहा है। आन्दोलन से टूटकर अन्दर आने वालों के साथ भी प्रबन्धन बिना भेदभाव के यही कर रहा है। यहां तक कि प्रबन्धन का साथ देने वाली यूनियन के पदाधिकारी भी इसकी चपेट में आ चुके हैं। भीतर दहशत का माहौल है। निलम्बित 28 श्रमिक नियमित रूप से तीन घण्टे गेट के सामने आकर बैठते हैं। प्रबंधन के भय से भीतर के श्रमिक उनसे मिलने से कतराते हैं। दूसरे, धरने में बैठे श्रमिकों का व्यवहार भी अनुचित होता है। यूनियन ने कई अपीलें बांटी, एकता के लिए कार्यक्रम किये, लेकिन फिर भी श्रमिक प्रबन्धन व यूनियन दोनों से खौफ खाने लगा है। तमाम श्रमिकों ने यूनियन को मासिक चंदा संघर्ष कोष तक देना बन्द कर दिया है। कहीं न कहीं एकता के प्रयास में कोई दिक्कत जरूर है। मेरा मानना है कि भीतर वाली यूनियन तो अस्तित्वहीन है, लेकिन इस दूसरी यूनियन को तो सूझ-बूझ भरे कदम उठाने चाहिए। क्या नेतृत्व का आम श्रमिकों के भीतर से भय निकालने और एकताबद्ध संघर्ष के लिए उन्हें प्रेरित करने का दायित्व नहीं होता है? यदि किसी श्रमिक का व्यवहार गलत है तो नेतृत्व के साथियों को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए? क्या एक आन्दोलन में किन्हीं कारणों से टूटकर अन्दर जाने वाला श्रमिक आजीवन गद्दार हो गया? ऐसे तमाम प्रश्न मेरे जैसे श्रमिकों के लिए परेशानी के कारण बने हुए हैं। ऐसे में हम आपसे मार्गदर्शन की उम्मीद रखते हैं।

● एक श्रमिक, ईस्टरइण्डस्ट्रीजलि., खटीमा

आपस की बात

भीतर बैठे दुश्मन से लड़ना होगा?

उस दिन मुझे अकेले ही सारा काम संभालना था। दूसरा स्वीपर छुट्टी पर था और मेरा यह फैक्टरी में दूसरा ही दिन था। दिक्कत तब और बढ़ गयी जब मालिक के गुरगों ने आदेश दिया कि फैक्टरी में विशेष सफाई करनी है; कारण दो दिन बाद सरकारी महकमें के कुछ लोग फैक्ट्री चेकिंग करने आयेंगे। इस फैक्ट्री में कपड़े का काम होता है, तैयार माल एक्सपोर्ट किया जाता है। कपड़ों की सिलाई-कढ़ाई के दौरान उड़ने वाली धूल धागे कतरनें एवं पैकिंग की पन्नियां, कागज स्टीकर, प्लास्टिक बोरे और गत्ते के छोटे-बड़े टुकड़े लगाकर फैलते रहते हैं, इन्हें समेटना और ठिकाने पर पहुंचाना बहुत मेहनत की मांग करता है। मुसीबत इस पर यह कि सुपरवाइजर और अन्य अफसरों को फैक्ट्री चमचमाती हुई मिलनी चाहिए। खैर काम शुरू हुआ और कुछ देर बाद ही जैकेट निकालनी पड़ी। 4-5 सेन्टीग्रेट तापमान होने के बावजूद मैं पसीने से नहा रहा था। मुझे प्यास भी लगी थी। गला सूख रहा था, नया-नया था तो पीने की पानी की जगह भी मालूम नहीं थी। घूमते-भटकते कम्पनी की रसोई के पास जा पहुंचा।

वहां मौजूद था कैलाश। इन भाई का काम है उन साहब लोगों को समय-समय पर चाय-पानी, नाश्ता कराना जिनके गले इसलिए सूख जाते हैं कि मजदूरों पर लगातार भौंकना पड़ता है। पेट में पड़ी अतड़ियां इसलिए मरोड़ खाने लगती हैं क्योंकि बैठे-बैठे कागजों पर दस्तखत करना और मजदूरों से कैसे ज्यादा काम लिया जाये इस पर शरीर की भारी ताकत खर्च हो जाती है। कैलाश 'उस समय गिलासों में पानी भर रहा था। मैं उसे अपना मजदूर भाई समझकर सहज ही पानी मांग बैठा। लेकिन देखता क्या हूं कि वो तो बिफर पड़ा- पानी पीना है तो उधर जाओ और अपनी औकात में रहो, स्वीपर हो तो स्वीपर की तरह रहो। मै उसे अपना, अपने जैसा एक भाई बिरादर समझ रहा था और वह था कि दुत्कारने में मालिकों को भी पीछे छोड़ दे रहा था। गुस्सा तो ऐसा लगा कि उसका सिर फोड़ दूं लेकिन खून का घूंट पीकर रह गया। सारा दिन यूं ही निकला। तरह-तरह की बातें दिल में उठती थीं।

एक तरफ दिल कहता कि ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा, जाति-धरम, यू.पी.-बिहार, अगड़ा-पिछड़ा और भी न जाने कितनी तरह से बंटा हुआ मजदूर मालिकों से कैसे अपनी लड़ाई लड़ पायेगा? क्या सारी जिंदगी मालिकों की जूती बनकर रहेगा? फिर दूसरा मन कहता कि जब मजदूरों की दु:ख-तकलीफें एक हैं तो उनसे लड़ने की जरूरत, अपनी जिन्दगी को सुनहरा बनाने का सपना और अपनी आने वाली पीढ़ी को एक बेहतर जिन्दगी देने की ख्वाहिशें हमें जरूर एक बना देंगी फिर भी इस भीतर बैठे दुश्मन से लड़ना ही होगा।

● रमेश मकवाना, नोएडा

चीज़ों को बदलने के लिए, चीज़ों को समझना होगा! ट्रेड यूनियन आन्दोलन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना होगा!!

साथी, आपने अपने कारखाने, यूनियन और आन्दोलन के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं। 'बिगुल' में अलग-अलग कारखानों व पूरे मजदूर आन्दोलन की समस्याओं और चुनौतियों पर लगातार लिखा जाता रहा है। अपने पत्र में आपने जो प्रश्न उठाये हैं, उस पर हम सूत्रवत अपनी राय यहां दे रहे हैं, विस्तार से चर्चा आगामी अंकों में। किसी भी कारखाने में मजदूरों के भीतर दो प्रकार की आबादी होती है- एक व्यापक आम मज़दूरों की और दूसरी इनमें से कुछ अगुआ तबके की। अगुआ मजदूर ही नेतृत्व की कमान संभालते हैं। उनके ऊपर काफी बड़ा दायित्व होता है। उनमें धैर्य, सहनशीलता, परिस्थितियों के आंकलन की क्षमता की महती आवश्यकता होती है। सही व गलत तत्वों की छंटाई करना, आपसी एकता मजबूत करना, लोगों को शिक्षित-प्रशिक्षित करते हुए आन्दोलन के लिए प्रेरित करना और सही मौके पर सटीक वार करना नेतृत्व का महत्वपूर्ण गुण होता हैं उसका काम अपने संघर्षों से सीखते हुए आगे के संघर्ष की रणनीति बनाना होता है। सही व कुशल नेतृत्व दूर दृष्टि रखता है और छोटी-मोटी बातों पर विचलित नहीं होता है। जहां तक आन्दोलन से मज़दूरों के टूटने का प्रश्न है तो किसी भी आन्दोलन को तोड़ने व कमजोर करने वाले तत्व थोड़े से ही होते हैं। आन्दोलन से टूटने वाले ज्यादातर मजदूर किसी लोभ, भय, दबाव, आर्थिक दबाव या आपसी अन्तरविरोधों के चलते टूटते हैं।

यह उनकी पिछड़ी चेतना, पलायनवादी मानसिकता व कमजोर इच्छाशक्ति का द्योतक है। ऐसे मज़दूरों को उनकी गलतियां बताना, उन्हें शिक्षित करना और संघर्षों से उन्हें फिर से जोड़ना नेतृत्व का एक जरूरी कार्य होता हैं गलती किसी से भी हो सकता है, लेकिन गलती से सीख न लेना सबसे भयानक होता है। नेतृत्व का यह दायित्व होता है कि वह व्यापक आबादी को एकजुट करने और उन्हें

(पेज 4 पर जारी)

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

● शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ ● मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ● जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ● विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टैण्ड, **गोरखपुर** ● विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर ● जनचेतना, डी 68, निरालानगर **लखनऊ** ● जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8:30) ● राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ● विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** ● विजय कुमार, 55/3, EWS आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ● प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी** ● राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ● राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र ● सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज-1, **दिल्ली** ● ललित सती, एल.आई.सी., फौज रोड शाखा, **दिल्ली** ● नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ● डी. के. सचान, एस.एच. - 272, शास्त्रीनगर **गाजियाबाद** ● सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, **बोकारो** इस्पातनगर, **बोकारो** ● गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, **बेगूसराय** ● पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ● विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक जबलपुर ● नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा ● पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ● सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ● राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ● बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ● विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, **नेपाल** ● विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्युठान राप्ती अंचल ● विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, **लुम्बिनी**, नेपाल

गन्ना किसानों के संकट के बारे में एस. प्रताप का दृष्टिकोण गलत है!

● नीरज, चण्डीगढ़

'बिगुल' के दिसम्बर 2002 अंक में **'क्या कर रहे हैं पंजाब के कामरेड'** (लेखक:सुखदेव) और **'चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान** (लेखक: एस. प्रताप) शीर्षक दो लेख छपे हैं। जरा गौर से देखें तो पत चलता है कि ये दोनों लेख एक दूसरे के बिलकुल उलट हैं।

सुखदेव के लेख में कम्युनिस्टों द्वारा पंजाब में माल के लाभकारी मूल्य की किसानों की लड़ाई लड़ने को रूसी नरोदवाद का भारतीय संस्करण कहा गया है। दूसरी ओर, एस.प्रताप के लेख में लाभकारी मूल्यों की हिमायत की गयी है। पता नहीं, यह गलती से हुआ है या किसी विभ्रम में। एस. प्रताप का लेख यदि सम्पादक मण्डल ने सोच-समझकर छापा है तो इससे तो यही नतीजा निकलता है कि किसान सवाल पर अभी 'बिगुल' के सम्पादक-मण्डल का दिमाग भी पूरी तरह से साफ नहीं है। यदि इस लेख से 'बिगुल' के सम्पादकों की सहमति है तब तो यही लगता है कि लेखक ही नहीं बल्कि सम्पादक मण्डल भी नरोदवादी विचारों से अभी मुक्त नहीं हो सका है।

एस. प्रताप के लेख से यही जाहिर होता है कि लेखक मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र से बिल्कुल ही नावाकिफ है। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की कसौटी पर इस लेख को सिरे से खारिज किया जा सकता है। फिलहाल इतने विस्तार में जाने के बजाय मैं लेख के बुनियादी भटकाव की ओर इंगित भर करूंगा।

लेखक ने अपने लेख में परस्पर-विरोधी बातें लिखी हैं। जैसे उनके मुताबिक, फसल के लाभकारी मूल्य से मुख्य फायदा धनी किसान को होता है, तथा छोटे-मंझोले किसानों के लिए यह छलावा है। मगर फिर भी वह "फसल का वाजिब मूल्य हासिल करने के लिए मिलों पर लगातार दबाव बनाने" की नसीहत देते हैं। आगे उनका कहना है कि छोटे किसानों की मुख्य मांग तो लागत मूल्य कम करने की है। लेखक से मेरा सवाल है कि क्या छोटे किसानों के लिए यह भी एक छलावा नहीं है? किसानों की लागत का एक हिस्सा तो उजरती श्रम भी होता है। क्या लेखक उसको भी कम करने के हक में है? क्या लागत कम होने से फसलों के मूल्य में गिरावट नहीं आयेगी? अगर लागत कम होने से फसलों के दाम नहीं गिरते तो क्या यह उपभोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी नहीं होगी?

अगर थोड़ी देर के लिए लेखक के साथ सहमत हुआ जाये कि लागत का कम होना छोटे किसानों के हित में है, तो इसका अर्थ क्या होगा? यही कि छोटे पैमाने के माल-उत्पादन (जिसे देर-सबेर तबाह होना ही है) की उम्र थोड़ी लम्बी हो जायेगी। छोटे पैमाने के माल-उत्पादन को बचाये रखने में सर्वहारा वर्ग का क्या हित हो सकता है? क्या बड़े पैमाने की पैदावार हर तरह से छोटे पैमाने की पैदावार से बेहतर नहीं होती? क्या एक मार्क्सवादी को (छोटे पैमाने की पैदावार की निस्बत) बड़े पैमाने की पैदावार के हक में नहीं खड़ा होना चाहिए?

फिलहाल मेरे ख्याल से इतना ही काफी है। समझदार के लिए इशारा काफी होता है। उम्मीद है कि सम्पादक मण्डल और श्री एस. प्रताप अपने-अपने अन्तरविरोध दूर कर लेंगे। अगर मेरी तरफ से और अधिक मदद की दरकार होगी तो सूचित कीजिएगा। अपना यह खत मैं लेनिन के हवाले से खत्म करूंगा:

"छोटे पैमाने की खेती और छोटी जोतों को पूंजीवाद के चतुर्दिक हमले से बचाकर किसान समुदाय को बचाने का प्रयास सामाजिक विकास की गति को अनुपयोगी रूप से धीमा करना होगा। इसका मतलब पूंजीवाद के अन्तर्गत भी खुशहाली की भ्रान्ति से किसानों को धोखा देना होगा, इसका मतलब मेहनतकश वर्गों में फूट पैदा करना और बहुमत की कीमत पर अल्पमत के लिए एक विशेष सुविधाप्राप्त स्थिति पैदा करना होगा।"

(लेनिन : मज़दूर पार्टी और किसान)

पूंजीवादी खेती के संकट पर सही कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का सवाल

(सम्पादकीय लापरवाही के लिए हमारी आत्मालोचना और गन्ने की खेती के संकट पर हमारा दृष्टिकोण)

हम बेलागलपेट यह स्वीकार करते हैं कि साथी **नीरज** द्वारा उठायी गयी आपत्ति पूरी तरह सही है और **'चीनी मिल मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान' (एस.प्रताप)** लेख का प्रकाशन सरासर सम्पादकीय असावधानी है, जिसके लिए हम अपनी आत्मालोचना करते हैं। हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय कृषि के संकट पर एस. प्रताप के लेख की वर्ग अवस्थिति 'बिगुल' की वर्ग-अवस्थिति नहीं है। 'बिगुल' में पहले इस मुद्दे पर प्रकाशित लेखों- टिप्पणियों से भी यह स्पष्ट है कि एस. प्रताप 'बिगुल' के पुराने लेखक हैं, इसलिए अखबार के ऐन प्रेस में जाते समय प्राप्त उनके लेख को जल्दबाजी में छपने को भेज दिया गया। लेकिन यह एक गंभीर लापरवाही है, जिसकी ओर हमारे कुछ अन्य प्रबुद्ध सहयोगियों ने भी इंगित किया है।

हम साथी नीरज की आलोचना का स्वागत करते हैं। उक्त प्रश्न पर हमारा स्टैण्ड साथी सुखदेव और साथी नीरज के स्टैण्ड से हो समानता रखता है। फिर भी हम जरूरी समझते हैं कि इस प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण को संक्षेप में यहां प्रस्तुत करें। हमने अपनी बात, राजनीतिक अर्थशास्त्र की ठेठ शब्दावली और हवालों से भरसक बचते हुए, सीधी-सरल भाषा में कहने की कोशिश की है ताकि 'बिगुल' के आम पाठकों को भी मामले की तह तक जाने में दिक्कत न हो। इसलिए लेख थोड़ा लम्बा हो गया है और पाठकों से थोड़ी धीरज की मांग करता है।

लाभकारी मूल्य और लागत मूल्य के सवाल, पूंजीवादी व्यवस्था में छोटी किसानी की स्थिति, भारत में मंझोले और छोटे किसानों की नियति, भूमि-प्रश्न (खेती-बाड़ी से जुड़े सवाल) पर सही कम्युनिस्ट दृष्टिकोण और सही नारे तथा इनसे संबंधित कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के भटकाव पर हम 'बिगुल' में लगातार सामग्री देने की जरूरत शिद्दत के साथ महसूस करते हैं। नीरज और सुखदेव जैसे साथी इसमें विशेष भूमिका निभा सकते हैं इस बारे में मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र क्या कहता है, यह सीधी-सादी भाषा में 'बिगुल' के पाठकों को बताने की सख्त जरूरत है। भविष्य में हमारी कोशिश रहेगी कि ऐसी सामग्री 'बिगुल' में लगातार प्रकाशित हो। साथी एस. प्रताप के लेख, उस पर साथी नीरज की टिप्पणी और इस सम्पादकीय टिप्पणी पर भी हम बहस के लिए लेख-टिप्पणियां आमंत्रित करते हैं।

लाभकारी मूल्य की मांग और छोटे-मंझोले किसान

1. लाभकारी मूल्य का सवाल अपने वर्ग-सार की दृष्टि से पूरी तरह से धनी किसानों-कुलकों-पूंजीवादी किसानों की मांग है, जो मुनाफे के लिए पैदा करते हैं। यह देहाती इलाके का पूंजीपति वर्ग है जो शोषण और शासन में पूरे देश के स्तर पर औद्योगिक पूंजीपति वर्ग का छोटा साझीदार है। लाभकारी मूल्य का आन्दोलन मूलत: छोटे और बड़े लुटेरे शासक वर्गों के बीच की लड़ाई है, इसके जरिए पूंजीवादी भूस्वामी-फार्मर-धनी किसान देश स्तर पर संचित अधिशेष (सरप्लस) में अपना हिस्सा बढ़ाने की मांग करते हैं। चूंकि उद्योग में मुनाफे की दर लगातार बढ़ाते जाने की संभावना खेती की अपेक्षा हमेशा ही बहुत अधिक होती है और चूंकि लूट के बड़े हिस्सेदार वित्तीय एवं औद्योगिक पूंजीपति वर्ग और साम्राज्यवादी भी हमेशा ही पूंजीवादी संकट का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा लूट के छोटे साझीदार-धनी किसानों पर थोपने की कोशिश करते रहते हैं, इसलिए इनके बीच खींचतान चलती ही रहती है। धनी किसान लाभकारी मूल्य की, सब्सिडी की ब्याज की रियायती दर की करों में छूट की और रियायती दर पर बिजली आदि की मांग करते रहते हैं। सभी पूंजीवादी देशों में वर्ग-ध्रुवीकरण को रोकने और संकट को विस्फोटक होने की स्थिति टालने के लिए पूरी खेती के नाम पर ऐसी रियायतें दी भी जाती हैं, लेकिन पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के स्वतंत्र अन्दरूनी गति से, संकट बढ़ने पर ये रियायतें नाकाफी हो जाती हैं और मन्दी की मार झेलता औद्योगिक

सम्पादक मण्डल

पूंजीपति वर्ग इन्हें खत्म करने के लिए भी दबाव बनाता है। संक्षेप में, लाभकारी मूल्य की मांग हो या उत्पादन-लागत घटाने की अथवा आम कृषि सब्सिडी की मांग- ये सभी गांव के गरीबों की शोषक और पूरे देश के मेहनतकशों के शोषण की साझीदार, धनी किसान आबादी की मांग है। किसी भी सूरत में, एक कम्युनिस्ट छोटे-मंझोले मालिक किसानों को लाभकारी मूल्य के आन्दोलन के साथ खड़ा होने का सुझाव नहीं दे सकता।

2. पूंजीवादी समाज में छोटे और मंझोले मालिक किसान प्राय: इस भ्रम के शिकार रहते हैं कि यदि बाजार में उनके द्वारा उत्पादित चीजों की बेहतर कीमत मिल जाये तो उनकी हालत कुछ बेहतर हो सकती है। कम्युनिस्ट प्रचार हर हाल में उनके कुछ बेहतर हो सकती है। कम्युनिस्ट प्रचार हर हाल में उनके इस भ्रम के विरुद्ध संघर्ष करता है। वह उन्हें लगातार यह बताने की कोशिश करता है कि बाजार में अधिक मुनाफा कमाने वाला हर हाल में कम मुनाफा कमाने वाले को पीछे छोड़ता ही जायेगा, हर हाल में बड़ी पूंजी छोटी पूंजी को खा जायेगी। एक नौबत ऐसी आनी ही है कि छोटे किसानों और अधिसंख्य मंझोले किसानों के पास बीज, खाद, पानी, कीटनाशक आदि के लिए रकम के लाले पड़ जायें। उन्हें बैंकों या महाजनों से कर्ज लेने अपनी जमीन धनी किसान को रेहन या पट्टे पर देने और दूसरे के खेतों में या उद्योगों में जाकर मज़दूरी करने के बावजूद कंगाल होकर मज़दूरों की जमात में शामिल होना ही है। पूंजीवाद के अंतर्गत यह उनकी अनिवार्य नियति है।

3. छोटे किसान अपने खेतों में मज़दूर न लगाकर, स्वयं दिन-रात हड्डीतोड़ श्रम करते हैं और फिर भी उन्हें अक्सर, जिन्दा रहने के लिए दूसरे के खेत में या अन्य कहीं मेहनत-मज़दूरी करनी पड़ती है। इन सबके बावजूद उनकी खेती लागत पूंजी के अभाव और कम रकबे के कारण पिछड़ती चली जाती है और जल्दी ही जमीन का उनके हाथ से निकल जाना एकदम निश्चित लगने लगता है। इस नाते वे मुनाफा कमाकर धनी बनने के भ्रम से जल्दी मुक्त हो जाते हैं। लेकिन चूंकि पूंजीवादीकरण की धीमी रफ्तार हमारे देश में अब तक उन्हें धीमी गति से ही तबाह करती रही है और चूंकि हमारे यहां चुनावी नकली कम्युनिस्टों के साथ ही, मति के मारे क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट भी छोटे किसानों को उनकी वास्तविक स्थिति बताने के बजाय उनके बीच जमीन की भूख बढ़ाने वाला प्रचार एवं आन्दोलन कार्य ही करते रहे हैं, इसलिए आज स्थिति यह है कि छोटे किसानों का एक हिस्सा भी सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा होकर समाजवाद की लड़ाई लड़ने की बजाय लाभकारी मूल्य की लड़ाई में शामिलबाजा बन जा रहा है।

4. मंझोले किसानों का मामला थोड़ा अलग है। चूंकि यह वर्ग अपने खेत में थोड़े बहुत मजदूर लगाकर भी काम कराता है और उनके अतिरिक्त श्रम को हड़पकर मुनाफा कमाता है इसलिए एक मालिक के रूप में तरक्की करके धनी हो जाने का भ्रम इसके भीतर अधिक होता है और अधिक दिनों तक बना रहता है। इन मंझोले किसानों का एक छोटा सा ऊपरी हिस्सा तरक्की करके धनी किसानों की जमात में शामिल होता रहता है, इसलिए इससे प्रेरित होकर नीचे का बहुत बड़ा हिस्सा लाटरी खेलने जैसी मानसिकता में खेती से मुनाफा कमाकर धनी हो जाने का सपना पाले हुए दांव लगाता रहता है इसकी स्थिति 'सांप-छछूंदर' वाली होती है। कम्युनिस्ट इनके भ्रम को तोड़कर इन्हें लगातार यह बताने की कोशिश करते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था में धनी बनने का वहम पाले हुए वे लगातार परेशान रहेंगे कि मुनाफा कमाने की होड़ में उन्हें बड़ी पूंजी वालों के हाथों तबाह होना ही है, कि यदि थोड़ा बहुत बेहतर दाम मिल भी जाये तो उन्नत खेती में धनी किसानों से मुकाबलतन पीछे छूटकर उन्हें कंगाल होना ही है, इसलिए उनके सामने बेहतरी का एकमात्र रास्ता यह है कि वे गांव और शहर के मजदूरों के साथ मिलकर समाजवाद के लिए लड़ें, मुनाफाखोरी की व्यवस्था के खिलाफ लड़ें, रोजगार और जीने की बुनियादी सुविधाओं की गारण्टी हक के तौर पर हासिल करने के लिए लड़ें तथा खेती पर काम करने वाले लोगों के सामूहिक मालिकाने की व्यवस्था के विरुद्ध लड़ें। कम्युनिस्ट इन मंझोले मिल्की किसानों के बीच समाजवादी सहकारी, सामूहिक और राजकीय खेती के बारे में लगातार बताते हैं और उनकी गलतफहमियों को दूर करके भरोसा पैदा करने की कोशिश करते हैं। कुछ साथी कहते हैं कि यह नामुमकिन है, इससे मंझोले किसान और भड़क उठेंगे। इस पर हमारा कहना है कि पहले वे ऐसा प्रचार करके तो देखें! ऐसा प्रचार वास्तव में कभी किया ही नहीं गया, अत: पहले से ही डरना बेबुनियाद है। दूसरी बात यह कि ऐसा करते हुए हम इस सच्चाई को मानकर चलते हैं कि फैसलाकुन घड़ी में भी मंझोले मालिकों का एक हिस्सा ही मज़दूर क्रान्ति के साथ आयेगा और वह भी डुलमुल रहेगा। एक दूसरा हिस्सा फिर भी शासक जमातों का ही पक्ष लेगा। लेकिन साथ ही, तीसरी बात यह भी है कि आज पूंजीवादीकरण की तेज रफ्तार दो छोरों के बीच इतना तेज-तीखा बंटवारा कर रही है कि मंझोले किसानों की आबादी आने वाले दिनों में और अधिक सिकुड़ जायेगी और गांवों-शहरों की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी ही मुकाबलतन अधिक होगी (यह आज ही पचास फीसदी के आसपास पहुंच रही है) वर्ग संघर्ष में मज़दूर वर्ग के हितों की चिन्ता के बगैर इस डुलमुल दोस्त (मंझोले किसान) को ही लेकर ज्यादातर कम्युनिस्ट परेशान और पस्त हैं तो भला क्या ताज्जुब की बात है! वे तो धनी किसानों तक के दु:खों पर बुक्का फाड़कर रो रहे हैं। 'बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना' तो सुना था पर दुश्मन के गम में दुबले होने की यह दास्तान तो एक अजूबा ही है!

5. सामाजिक-आर्थिक ढांचे की गति एवं दिशा की वैज्ञानिक-ऐतिहासिक

(पेज 4 पर जारी)

(पेज 3 से आगे)

गन्ने की खेती के संकट पर हमारा दृष्टिकोण

पड़ताल की दृष्टि से देखें तो पूंजीवाद के अंतर्गत बड़ी पूंजी के हाथों छोटी पूंजी की तबाही, बड़े मालिकों के हाथों छोटे मालिकों की तबाही, उद्योगों के बनिस्पत खेती को पिछड़ते जाना, खेती में पूंजीवादी संकट उद्योगों से अधिक होना, वर्गों का तीव्र ध्रुवीकरण और मंझोले किसानों के बड़े हिस्से का तबाह होकर सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा कतारों में शामिल होना अनिवार्य है। जो होना ही है, उसके बारे में भ्रम पैदा करना हमारा काम नहीं है। इसे टालकर पूंजीवाद की उमर लम्बी करना भी हमारा काम नहीं। और वस्तुपरक नज़रिए से यदि देखें तो यह इतिहास को आगे ले जाने वाली ही एक चीज़ है। उद्योग हो या खेती, बड़े पैमाने का पूंजीवादी उत्पादन भारी मेहनतकश आबादी को संकेन्द्रित, एकजुट, लामबन्द और संगठित होने के अनुकूल हालात तैयार करता है, बीच की डुलमुल आबादी को सिकोड़कर छोटा कर देता है और उसे भी फैसलाकुन (इस पार या उस पार) बनाता है। और इस तरह समाजवादी क्रान्ति के लिए अनुकूल माहौल बनाता है कोई कम्युनिस्ट भला क्यों चाहेगा कि गन्ना, तम्बाकू, आलू- प्याज या अनाज का लाभकारी मूल्य मांगने वाले या उत्पादन-लागत घटाकर खेती को लाभदायी बनाने की मांग करने वाले धनी किसानों के पहलू में या पिछवाड़े छोटे किसान थोड़ी देर के लिए भी खड़े हों और इस तरह उनकी ताकत, इस व्यवस्था की उम्र और अपने भरम की उम्र लम्बी करने का काम करें! तर्क यह भी दिया जा सकता है कि यह मालिक वर्गों के बीच का अन्तरविरोध बढ़ाने वाला रणकौशल (टैक्टिस) है। लेकिन यह गलत है। व्यवस्था का अन्तरविरोध या संकट बढ़ाने के बजाय यह बीच में खड़े एक मिल्की वर्ग (मंझोले किसान) को विरोधी पाले में धकेलने का और एक मेहनतकश जमात (गरीब किसान) की वर्ग चेतना को बढ़ाने के बजाय भोथरा बनाकर सर्वहारा वर्ग की लड़ाई को कमजोर बनाने का काम करता है तथा जनता के ही एक हिस्से को उसके दूसरे हिस्से के खिलाफ (और दुश्मन के साथ) खड़ा कर देता है। लाभकारी मूल्य की मांग हो या लागत घटाने की मांग- इससे यदि छोटी किसानी को बचाये रखने का भ्रम पलता-बढ़ता है तो यह क्रान्ति-विरोधी है। नरोदवादी यही भ्रम पालते-पोसते थे जिसके खिलाफ **लेनिन** ने काफी कुछ लिखा है। कहने का मतलब यह भी नहीं कि हम पूंजी के हाथों छोटे किसानों की तबाही का डागा-बाजा बजाकर स्वागत करते हैं क्योंकि यह क्रान्ति के लिए अनुकूल है। यह पूंजीवाद का काम है, पूंजीवाद के हाथों छोटे मालिकों की तबाही और वर्ग-ध्रुवीकरण होना ही है। यह हमारे चाहने न चाहने की, हमारी खुशी या गम की बात ही नहीं है। हमारा काम है जनता को यह बताना कि पूंजीवाद में यही होगा, अतः वह किसी मुगालते में न रहे जल्दी से जल्दी खामखयाली से निजात पाना ही उसके हक़ में है। और रास्ता एक ही है, वह है समाजवाद का रास्ता। छोटे किसानों की तबाही के बारे में लिखते हुए उसके कारणों को बताना, पूंजीवाद को 'एक्सपोज' करना और उसके खिलाफ नफ़रत की आग भड़काना हमारा असली काम होना चाहिए।

लाभकारी मूल्य की मृग मरीचिका: एक पोस्टमार्टम

6. अब जरा सीधी-सादी भाषा में लाभकारी मूल्य और लागत मूल्य वाले मसले की भी जांच-पड़ताल कर ली जाये। पहले लाभकारी मूल्य को लें। मान लीजिए कि गन्ना-किसानों को चीनी मिल मालिकों से गन्ने की बेहतर कीमत मिल ही जाती है। तो पहली नज़र में इतना तो एक आम आदमी भी समझ जाता है कि चीनी की बढ़ी कीमत के रूप में इसका बोझ बाज़ार से चीनी खरीदकर खाने वाली जनता पर पड़ता है। मिल मालिकों, व्यापारियों और सरकार को बस एक बहाने भर की देर होती है और वे वास्तविक भरपाई से बहुत अधिक खसोट लेते हैं। पर बात इससे कहीं बहुत अधिक है। अपने उत्पाद की बेहतर कीमत मिलने से धनी किसान के पास जो रकम आती है, उसका धेला भी उसके खेत में काम करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने पर वह मर्जी से नहीं खर्च करता। इसका इस्तेमाल वह और अधिक मुनाफा कमाने के लिए पूंजी के रूप में करेगा। इस पैसे से या तो वह कुछ और तबाहहाल छोटे किसानों की जमीन खरीदकर उन्हें सड़क पर धकेलेगा या फिर उन्नत बीज आदि के साथ और अधिक उन्नत मशीनें इस्तेमाल करके पूंजी-सघन खेती करेगा तथा कम मज़दूरों से काम लेकर उनके और अधिक अतिरिक्त श्रम का दोहन करेगा तथा शेष मज़दूरों को बेकार कर देगा। इससे बाज़ार में श्रम शक्ति की कीमत गिरेगी, मजदूरों को मोल तोल की क्षमता और घट जायेगी और कठिन से कठिन हालात में कम से कम मज़दूरी देकर उनसे काम लेना आसानतर हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त बेहतर मूल्य से हासिल रकम को आटा चक्की, राइस मिल, आरा मशीन, डेरी, पोल्ट्री आदि में लगाकर या शेयर खरीदकर धनी किसान अपनी आर्थिक स्थिति को अधिक मजबूत बना लेगा। उधर छोटे किसान के साथ बस इतना ही हो सकेगा कि वह रोजमर्रे की छोटी-मोटी जरूरतों के लिए थोड़ी अधिक नकदी पा जायेगा, महाजन या बैंक की कर्ज को कुछ एक अधिक बकाया किश्ते चुका देगा, वगैरह-वगैरह। अपनी छोटी खेती के चलते बेहतर कीमत भी उसे इतनी अधिक रकम नहीं दे सकती कि वह उन्नत मशीनें ले ले या किसी भी तरह से खेती उन्नत कर ले या कुछ और जमीन ले ले। उसे अपनी भारी आबादी से धनी किसान को आन्दोलन में ताकत देने के बाद, बस थोड़ी सी राहत मिल पाती है और साथ ही उसकी खामखयाली की उम्र थोड़ी और बढ़ जाती है। इस तरह वह मज़दूर वर्ग और देश की आम आबादी के खिलाफ मोहरे के रूप में बहुत सस्ते में इस्तेमाल हो जाता है। उधर मिल मालिक गन्ने का जो अधिक मूल्य देता है तो अपना मुनाफा घटाकर नहीं देता। पूंजीवादी उत्पादन का तर्क इसकी इजाजत नहीं देता। कोई भी पूंजीपति ऐसा नहीं करता। ऐसा करके वह दूसरे पूंजीपतियों से गलाकाटू प्रतियोगिता में टिका भी नहीं रह सकता। ऐसी सूरत में वह लाज़िमी तौर पर अपने मज़दूरों का शोषण बढ़ा देता है। यदि वह बड़ा पूंजीपति हुआ तो अपने अन्य उद्योगों से उगाही गयी पूंजी के सहारे (या वित्तीय संस्थानों के सहारे) उन्नत मशीनें लगाकर मज़दूरों के एक हिस्से की छंटनी करके कम मजदूरों को और अधिक निचोड़ेगा। या फिर चीनी मिल मज़दूर आन्दोलन की कमजोर स्थिति का फायदा उठाकर वह ज्यादा से ज्यादा मजदूरों से दिहाड़ी पर ठेके पर अथवा कैजुअल एवं टेम्परी के रूप में काम लेकर, पहले से मौजूद रही-सही सुविधाओं (दवा इलाज, कैण्टीन, वर्दी आदि) में कटौती करके, वेतन बढ़ोत्तरी-बोनस आदि को रोककर और काम के घण्टे बढ़ाकर गन्ने की बढ़ी हुई कीमत देने से हुए 'नुकसान' से कई गुने अधिक की भरपाई करने की कोशिश करेगा। इसके साथ ही वह सरकार से तरह-तरह की सब्सिडी और प्रत्यक्ष करों में रियायत के लिए दबाव बनायेगा। सब्सिडी की वह रकम जनता चुकायेगी और पूंजीपतियों को दी गई प्रत्यक्षकर की हर रियायत व्यापक आबादी से ली जाने वाली परोक्ष कर में बढ़ोत्तरी से पूरी की जायेगी। एक ओर चीनी पर से सब्सिडी हटाकर उसे पूरी तरह से खुले बाजार में बेचकर जनता की कमर दोहरी की जायेगी और दूसरी ओर कारखाना मालिक कों तरह-तरह की रियायतें व सब्सिडी दे दी जायेगी। इसके अतिरिक्त चीनी मिल मालिक लाभकारी मूल्य की मांग के आंदोलन की आड़ लेकर कारखाना बन्द करके अपनी पूंजी खुले-छिपे निकालकर (मशीनें, जमीन आदि बेचकर अन्य अधिक लाभकारी उद्योग में निवेश कर सकता है और 'बेरोजगारों की रिजर्व आर्मी' में कछ और बढ़ोत्तरी करके बाज़ार में श्रम शक्ति की कीमत और अधिक गिराने का काम कर सकता है (यह हो भी रहा है)। यह भी हो सकता है कि लाभकारी मूल्य के आन्दोलन से गोदामों में पहले से ही भरी चीनी के चलते बाज़ार में कीमतें गिरने से रोकने के लिए मिल मालिकों को उत्पादन कुछ समय तक रोकने का एक बहाना भी मिल जाये (इस बार यह हुआ भी है)। लुब्धेलुब्धाव यह कि किसी भी रूप में लाभकारी मूल्य की मांग धनी किसान और मिल मालिकों के बीच का मुद्दा है और इस मांग के पूरी होने पर धनी किसान को तो लाभ होगा ही, मिल मालिक भी घाटे में नहीं होगा और हर हाल में मार पड़नी है मज़दूरों पर और आम जनता पर, तथा छोटे किसानों को मिलनी है ओस चाटने जितनी राहत और उनके वहम को मिलनी है थोड़ी और उम्र! अतः साथी एस. प्रताप का यह सुझाव एकदम गलत है कि छोटे किसानों को "...फसल का वाजिब मूल्य पाने के लिए भी मिलों पर लगातार दबाव बनाये रखने की रणनीति अख्तियार करनी चाहिए।"

क्या लागत-मूल्य घटाने की मांग छोटे-मंझोले किसानों के हक़ में है?

7. अब लागत मूल्य घटाने के सवाल को लिया जाये। एस. प्रताप का यह सुझाव भी, कि "...किसान आन्दोलन की मुख्य मांग लागत मूल्य कम करने पर ही केन्द्रित होनी चाहिए", हमें एक ग़लत समझ से उपजा हुआ लगता है। दरअसल, यह मांग भी अपने वर्ग-सार की दृष्टि से धनी किसानों की ही मांग है और यह भी छोटे किसानों को परोक्षतः मज़दूर वर्ग के खिलाफ दुश्मन के पक्ष में ले जाकर खड़ा कर देने वाली मांग है। ज्यादातर लोगों को ऊपरी तौर पर यह लग सकता है कि चूंकि गन्ने का मूल्य बढ़ने पर चीनी भी महंगी हो जायेगी अतः व्यापक आबादी के हित के खिलाफ होने से गन्ने की लाभकारी मूल्य की मांग गलत है और चूंकि लागत मूल्य कम करने का मतलब होगा बिजली, उर्वरक, कीटनाशक, बीज, मशीनें आदि-आदि की कीमत कम करना और ये चीजें बड़े कारखानेदार पैदा करते हैं, अतः यह सही नारा है क्योंकि यह जनता के मुख्य दुश्मन के खिलाफ धनी किसानों की ताकत को भी ला खड़ा कर देगा और यदि वे नहीं आयेंगे तो धनी किसानों से अलग छोटे-मंझोले किसानों (यानी मज़दूर के मित्र वर्गों) का एक स्वतंत्र आन्दोलन खड़ा हो जायेगा। लेकिन यह सोच एकदम गलत है। यह बहुपरती नासमझी का द्योतक है। किसान खेती में जो पूंजी लगाता है, उसका एक हिस्सा ट्रैक्टर आदि कृषि उपकरणों की खरीद व रखरखाव, डीजल, बिजली, पानी, खाद, बीज, कीटनाशक आदि पर (अचल पूंजी) खर्च होता है और दूसरा हिस्सा श्रम शक्ति पर (चल पूंजी) खर्च होता है। अचल पूंजी वाला हिस्सा (तत्काल या किश्तों में) उत्पादित माल में संक्रमित हो जाता है। जो श्रम शक्ति पर खर्च होने वाली चल पूंजी होती है, उसी का मूल्य श्रम की प्रक्रिया में बढ़ता है और नतीजतन अतिरिक्त मूल्य का सृजन होता है। यानी यदि अचल पूंजी घटती है और उसी अनुपात में फसल की कीमत नहीं घटती तो यह सीधे-सीधे कृषि उत्पादों के उपभोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी होगी। यानी लागत मूल्य घटाने का तर्क सिर्फ यहीं तक जा सकता है कि किसान श्रम शक्ति पर होने वाले खर्च को घटाये यानी अपने खेतों पर काम करने वाले उजरती मज़दूरों को और अधिक निचोड़े। (इस भ्रान्ति के पीछे दरअसल भोंड़े अर्थ शास्त्रियों वाली यह सोच काम करती है माल का मूल्य इसके उत्पादन में लगी लागत से, यानी उत्पादन के साधनों के मूल्य और मज़दूरी से तय होती है, जबकि मार्क्सवादी अर्थशास्त्र यह सिद्ध कर चुका है कि मूर्तश्रम मालों के उपयोग मूल्य का और अमूर्त श्रम उनके विनिमय मूल्य का निर्माण करता है, यानी श्रम ही मूल्य का एकमात्र स्रोत है। थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि उद्योगपति किसानों के किसी आन्दोलन की मांग मानकर ट्रैक्टर, खाद, कीटनाशक, डीजल, बिजली आदि की कीमत कम कर दें और किसी तरह से धोखाधड़ी करके यह घटोत्तरी कृषि-उत्पादों के मूल्य में संक्रमित न होने दिया जाये। तो ऐसी सूरत में अर्थशास्त्र का सामान्य विद्यार्थी भी यह जानता है कि उत्पादों के सस्ते होने से पूंजीपति का मुनाफा कम नहीं होता, बल्कि इसकी कीमत भी कारखाने में काम करने वाले मज़दूरों को ही चुकानी पड़ती है। पूंजीपति उन्नत तकनोलॉजी लाकर मजदूरों की कम संख्या से उतने ही समय में ज्यादा माल उत्पादित करता है और इस प्रक्रिया में उसके द्वारा कमाये जाने वाले सापेक्षित अतिरिक्त मूल्य में बढ़ोत्तरी, के साथ ही मज़दूरों की एक भारी आबादी सड़कों पर धकेल दी जाती है। पूंजीपति द्वारा बनाई जाने वाली चीज़ें क्यों बाजार में सस्ती हो जाती हैं और उसके द्वारा कमाये जाना वाला मुनाफा भी बढ़ जाता है, इस प्रक्रिया को नहीं समझने से ही किसी के दिमाग में कृषि के लागत मूल्य को घटाने वाला उपरोक्त तर्क आ सकता है! और सबसे बड़ी बात यह कि यदि ऐसा हो भी जाये और इससे धनी किसानों का मुनाफा बढ़ भी जाये, तो छोटे किसानों को इससे भला क्या हासिल होगा? उनकी अन्ततोगत्वा तबाही का निश्चित भविष्य थोड़ा और आगे खिसक जायेगा, उन्हें थोड़ी राहत मिल जायेगी और उनके भ्रम की उम्र थोड़ी और बढ़ जायेगी। तब उन्हें यह समझा पाना थोड़ा और दुश्वार हो जायेगा कि पूंजीवादी खेती पशुवत जीवन से अधिक उन्हें कुछ और नहीं दे सकती और उनके सामने एकमात्र रास्ता है-मज़दूरों के पक्ष में खड़ा होकर **"समूची आजादी और समूची जमीन"** (यानी काम करने वालों के हाथों में सत्ता और सभी कारखानों की ही तरह सारी ज़मीन पर भी काम करने वालों का सामूहिक मालिकाना) के लिए संघर्ष करना। साथी एस. प्रताप ने छोटे किसानों को "धनी किसानों के दायरे से स्वतंत्र अपनी नयी राह खोजने की दिशा में" आगे बढ़ने के प्रति जो विश्वास जताया है, वह नयी राह भी वस्तुतः एक पूंजीवादी राह ही है और इस राह की सोच छोटी किसानी अर्थव्यवस्था को बचाये रखने की मासूम मानवतावादी चिन्ता से जन्मी एक नरोदवादी किस्म की सोच ही है। 8. इसके अतिरिक्त साथी एस.प्रताप का पूरा लेख एक वर्गोपरि नज़रिए की झलक देता है। धनी किसानों की मुनाफाखोरी को इंगित करते हुए भी लेख से उनके संकट के प्रति हमदर्दी की बू आती है। चीनी मिल मालिकों की लूट से धनी किसान तबाह नहीं है बल्कि कुछ अधिशेष में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए लड़ रहा है (और यदि एक हद तक तबाह है भी तो सर्वहारा के हरावल की चिन्ता का यह विषय नहीं)। छोटे-मंझोले गन्ना किसान यदि तबाह हो रहे हैं तो मिल मालिकों के अतिरिक्त धनी किसानों के हाथों भी तबाह हो रहे हैं। धनी किसानों के अतिरिक्त धनी हो जाने का वहम पाले हुए मंझोले किसान भी हमारी हमदर्दी के नहीं बल्कि आंख खोल देने वाली दो टूक आलोचना के ही हकदार हैं। बीच में खड़े और लगातार डुलमुल इस वर्ग के एक हिस्से को भी खरी सच्चाई बताकर ही सर्वहारा वर्ग अपने पक्ष में ला सकता है। हमारी अवस्थिति हर प्रश्न पर, हर हाल में मज़दूर वर्ग और समाजवाद के पक्ष में खड़ा होकर सोचने की ही होनी चाहिए।

(पेज 2 से आगे)

मज़दूर आन्दोलन के समक्ष कठिन चुनौतियां

गोलबन्द करने का सतत प्रयास जारी रखे। यह कार्य महज पदासीन यूनियन नेताओं का ही नहीं है, बल्कि हर सचेत मज़दूर का है। इसके साथ ही पारदर्शी व जनवादी तरीके से ट्रेड यूनियनों का संचालन एक अहम मुद्दा है। अतीत के आन्दोलन इस बात के गवाह हैं कि आन्दोलनों के दौरान टूटने वाले मज़दूरों की उस वक्त मालिक वर्ग चाहें जितनी भी आवभगत कर ले, बाद में उनका हश्र और भी ज्यादा बुरा होता है। पूंजीपतियों का तो यह चिरपरिचित फार्मूला है कि फूट डालो, इस्तेमाल करो फिर मौका निकलते ही उन्हें दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दो। आपके पत्र से भी आपके कारखाने में यह स्थिति दिखायी दे रही है। यहाँ एक और तथ्य की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहेंगे। मजदूर संघर्षों के दौरान कानूनी लड़ाइयों की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में श्रम न्यायालय से लेकर उच्च या सर्वोच्च न्यायालय तक से मजदूरों को रत्तीभर भी उम्मीद नहीं पालना चाहिए क्योंकि अब ये खुले रूप से पूंजीपतियों के पक्ष में खड़े हो चुके हैं। आज मजदूर आन्दोलन के सामने सबसे बड़ा संकट है- आपसी एकता की कमी, एक कारखाने के भीतर कई यूनियनों की मौजूदगी, मजदूर आन्दोलन के बारे में नेतृत्व के भीतर मजदूरपक्षीय विचारधारा व एक सुसंगत सुनियोजित रणनीति का अभाव। किसी भी आन्दोलन की योजना व रणनीति बनाने के लिए दो चीजों का ख्याल बेहद ज़रूरी है- वस्तुगत परिस्थितियां और दूसरी अपनी ताकत। अपनी ताकत के तहत लड़ने वाले की चेतना, उसकी एकजुटता, नेतृत्व की राजनीतिक परिपक्वता, व्यापक आबादी का समर्थन आदि कारक शामिल हैं। वस्तुगत परिस्थितियों के तहत कारखाने, इलाके व देश-दुनिया के वर्तमान माहौल का आकलन आदि आते हैं। किसी भी छोटे से छोटे आन्दोलन को देश-दुनिया का माहौल प्रभावित करता है। आज देश का औद्योगिक माहौल मज़दूरों के खिलाफ़ है। उदारीकरण- निजीकरण के इस दौर में मालिकों की मनमानी की खुली छूट मिली हुई है। कोर्ट-कचहरी मालिकों की खुलकर तरफदारी कर रहे हैं। प्रशासन पहले से ज्यादा मुस्तैदी से मालिकों की चाकरी कर रहा है। मज़दूर विरोधी घातक श्रमकानूनों के लागू करने की कोशिशें जारी हैं। इलाकाई पैमाने पर भी तराई में ज्यादातर मज़दूर आन्दोलन पराजित हुए हैं। दूसरी तरफ देश के मजदूर आन्दोलन में पस्ती, बिखराव व गिरावट का दौर चल रहा है। ट्रेड यूनियनों का राष्ट्रीय नेतृत्व पहले सुधारवादी व अर्थवादी था अब या तो मालिकों का एजेण्ट बन गया है या फिर निठल्ला बैठा ऊंघ रहा है। ऐसे कठिन समय में मज़दूर आन्दोलन के सामने बेहद कठिन चुनौतियां खड़ी हैं। उदारीकरण-निजीकरण-श्रमसुधार आदि के इस दौर में मज़दूरों की देशव्यापी एकता बेहद जरूरी है। इसके साथ ही व्यापक इलाकाई एकजुटता के प्रयास तेज करने होंगे। इसके लिए व्यापक, सघन एवं लम्बे समय तक राजनीतिक प्रचार कार्य चलाना होगा। इसके साथ ही ट्रेड यूनियन के अर्थवादी भटकाव से लम्बा संघर्ष भी बाकी है। कारखाना स्तर पर, आम मज़दूर आबादी को अपनी हर लड़ाई के लिए जुझारू व सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार रहना होगा। मज़दूर आबादी को, उनके रोजमर्रे के जीवन व संघर्ष में उनके इस ऐतिहासिक मिशन की याद दिलानी होगी कि छोटी-छोटी लड़ाइयां लड़ते हुए क्रान्तिकारी बदलाव की फैसलाकुन लड़ाई के लिए भी उन्हें तैयारी करनी है। मज़दूर क्रान्ति ही अन्ततोगत्वा मज़दूर वर्ग पर ढाई जाने वाली तमाम आपदाओं और जुल्मों का खात्मा कर सकती है शिक्षा व आंदोलन के अमली प्रशिक्षण के दौरान ही उनके बीच से उनका सच्चा क्रान्तिकारी नेतृत्व विकसित होगा।

- सम्पादक

किसानों के बारे मे कम्युनिस्ट दृष्टिकोण: कुछ महत्वपूर्ण पहलू

"... वर्ग-चेतन मज़दूर के लाल झण्डे का पहला मतलब है, कि हम अपनी पूरी शक्ति के साथ पूरी आज़ादी और पूरी ज़मीन के लिए किसानों के संघर्ष का समर्थन करते हैं; दूसरे, इसका अर्थ है कि हम यहीं नहीं रुकते बल्कि इससे आगे जाते हैं। हम आज़ादी और ज़मीन के साथ ही समाजवाद के लिए युद्ध छेड़ रहे हैं। समाजवाद के लिए संघर्ष पूंजी के शासन के विरुद्ध संघर्ष है। यह सर्वप्रथम और सबसे मुख्य रूप से उजरती मज़दूर द्वारा चलाया जाता है जो प्रत्यक्षत: और पूर्णत: पूंजीवाद पर निर्भर होता है जहां तक छोटे मालिक किसानों का प्रश्न है, उनमें से कुछ के पास खुद की ही पूंजी है, और प्राय: वे खुद ही मज़दूरों का शोषण करते हैं। इसलिए सभी छोटे मालिक किसान समाजवाद के लिए लड़ने वालों की कतार में शामिल नहीं होंगे, केवल वही ऐसा करेंगे जो कृतसंकल्प होकर सचेतन तौर पर पूंजी के विरुद्ध मज़दूरों का पक्ष लेंगे, निजी सम्पत्ति के विरुद्ध सार्वजनिक सम्पत्ति का पक्ष लेंगे।

('किसान समुदाय और सर्वहारा')

"पूंजीवाद के अंतर्गत छोटा मालिक किसान, वह चाहे या न चाहे, इससे अवगत हो या न हो, एक माल-उत्पादक बन जाता है और यही वह परिवर्तन है जो मूलभूत है, क्योंकि केवल यही उसे, बावजूद इसके कि वह भाड़े के श्रम का शोषण नहीं करता, एक निम्नपूंजीपति बना देता है और उसे सर्वहारा के एक विरोधी के रूप में बदल देता है। वह अपना उत्पादन बेचता है। जबकि सर्वहारा अपनी श्रमशक्ति। एक वर्ग के रूप में छोटा मालिक किसान केवल कृषि उत्पादों के मूल्य में वृद्धि ही चाह सकता है और यह बड़े भूस्वामियों के साथ लगान में उसकी हिस्सेदारी और शेष समाज के विरुद्ध भूस्वामियों के साथ उसकी पक्षधरता के समान है। माल-उत्पादन के विकास के साथ ही छोटा मालिक किसान अपनी वर्ग स्थिति के अनुरूप एक निम्न-भूसम्पत्तिवान मालिक बन जाता है।"

('कृषि में पूंजीवाद के विकास के आंकड़े')

● व्ला.इ.लेनिन

"... यदि रूस में वर्तमान क्रान्ति की निर्णायक विजय जनता की पूर्ण सम्प्रभुता कायम करती है, यानी एक गणराज्य और एक पूर्णजनवादी राज्य व्यवस्था की स्थापना करती है, तो पार्टी जमीन के निजी मालिकाने को खत्म कर देगी और सारी जमीन सामान्य सम्पत्ति के रूप में पूरी जनता को सौंप देगी।

इसके अतिरिक्त, सभी परिस्थितियों में रूसी सामाजिक जनवादी पार्टी का उद्देश्य, जनवादी भूमि-सुधारों की चाहे जो भी स्थिति हो, ग्रामीण सर्वहारा के स्वतंत्र वर्ग संगठन के लिए, उसे समझाने के लिए कि उसका हित किसान पूंजीपति वर्ग के हित से असमाधेय रूप से विरोधी है, उसे पैमाने के मालिकाने के विरुद्ध चेतावनी देने के लिए जो, जब तक माल-उत्पादन मौजूद रहेगा तब तक जनता की दरिद्रता दूर नहीं कर सकता और अन्त में, सभी दरिद्रता और सभी शोषण को समाप्त करने के एकमात्र साधन के रूप में एक पूर्ण समाजवादी क्रान्ति की आवश्यकता पर जोर देने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना है।"

('मज़दूर पार्टी के भूमि कार्यक्रम में संशोधन')

"कोई पूछ सकता है: इसका हल क्या है, किसानों की स्थिति कैसे सुधारी जा सकती है? छोटे किसान खुद को मज़दूर वर्ग के आन्दोलन से जोड़कर और समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष में एवं जमीन तथा उत्पादन के अन्य साधनों (कारखानें, मशीनें आदि) को सामाजिक सम्पत्ति के रूप में बदल देने में मज़दूरों की मदद करके ही अपने आपको पूंजी की जकड़ से मुक्त कर सकते हैं। छोटे पैमाने की खेती और छोटी जोतों को पूंजीवाद के चतुर्दिक हमले से बचाकर किसान समुदाय को बचाने का प्रयास सामाजिक विकास की गति को अनुपयोगी रूप से धीमा करना होगा, इसका मतलब पूंजीवाद के अंतर्गत भी खुशहाली की संभावना की भ्रान्ति से किसानों को धोखा देना होगा इसका मतलब मेहनतकश वर्गों में फूट पैदा करना और बहुमत की क़ीमत पर अल्पमत के लिए एक विशेष सुविधाप्राप्त स्थिति पैदा करना होगा।"

('मज़दूर पार्टी और किसान')

"यदि, नरोदवादियों के कल्पनालोक में, हम वास्तविक आर्थिक कारणों को मिथ्या विचारधारा से सावधानीपूर्वक अलग करें, तो उसी क्षण पायेंगे कि सामन्ती जागीरों के टूटने से, चाहे वे बंटवारे से टूटें या राष्ट्रीकरण से या म्युनिसिपलीकरण से, सबसे अधिक लाभान्वित होने वाला वर्ग स्पष्ट तौर पर पूंजीवादी किसान ही है। राज्य-प्रदत्त "ऋण-अनुदान" भी पूंजीवादी किसान को ही सर्वाधिक लाभ पहुंचाने के लिए बाध्य है। "किसान भूमि क्रान्ति" भूस्वामित्व की पूरी व्यवस्था को शुद्ध रूप से इन पूंजीवादी फर्मों की प्रगति और समृद्धि की शर्तों के अधीन कर देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

('सामाजिक जनवाद का भूमि कार्यक्रम')

मज़दूरों की लड़ाइयों पर पछता रहे हैं ज्योति बसु

पश्चिम बंगाल में सत्ता संभाले, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवाई वाले वाम मोर्चे को पच्चीस साल पूरे हो चुके हैं। इन पच्चीस सालों में इन्होंने पूंजीपतियों की पूरी वफादारी से सेवा की है। अभी पिछले साल ही पूंजीपतियों के इन सेवकों ने अपनी हुकूमत की सिल्वर जुबली मनायी है। 'कम्युनिस्ट पार्टी' का लेबल लगाये मज़दूर वर्ग के ये गद्दार पिछले लम्बे समय से भारत के मज़दूर वर्ग की आंखों में धूल झोंकते आये हैं। मगर पूंजीवाद का संकट जिस तरह से तीखा होता जा रहा है वैसे इन नामधारी कम्युनिस्टों की असलियत भी लोगों में नंगी होती जा रही है।

पिछले दिनों पश्चिम बंगाल के जूट मिल मज़दूरों के संगठन, जिसकी बागडोर 'सीटू' के हाथ में है, की कनवेंशन में सी.पी.एम. नेता, पिछले लम्बे समय तक पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री रह चुके ज्योति बसु ने अपने भाषण में तो हर तरह की शर्म-हया (जिसकी वैसे भी संशोधनवादियों के पास कमी होती है) का दामन ही छोड़ दिया। इस भाषण में ज्योति बसु ने मज़दूरों को पूंजीपतियों के खिलाफ हर तरह की लड़ाई का त्याग करने, खुद को वैश्वीकरण तथा आर्थिक सुधारों के अनुकूल ढालने के लिये 'रचनात्मक ट्रेड यूनियनवाद' की नसीहत दी। बीते समय में ज्योति बसु ने जिन भी मज़दूर आन्दोलनों की अगुवाई की उस पर उन्होंने गहरा पछतावा भी प्रकट किया।

पिछले दशक में भारत के पूंजीपति वर्ग द्वारा शुरु किये गये तथाकथित आर्थिक सुधारों की सबसे अधिक मार मज़दूरों पर ही पड़ी है। जगह-जगह मज़दूरों के संगठनों को तोड़ा जा रहा है। मज़दूरों पर काम का बोझ बढ़ाया जा रहा है और तनख्वाहें कम होती जा रही हैं। उद्योग की हर शाखा में ठेकेदारी का बोलबाला होता जा रहा है। पुलिस-प्रशासन-कोर्ट- कचहरी, चुनावी राजनीतिक पार्टियां आज सब खुलेआम पूंजीपतियों के पक्ष में खड़ी हैं। बद से बदतर हो रही मज़दूर वर्ग की हालत मज़दूरों में व्यापक आक्रोश को भी जन्म दे रही है। यह आक्रोश यहा-वहां पर मज़दूरों के संगठन काफी मजबूत हो रहे हैं।

पिछले समय में यहां मज़दूर आंदालन तेज हुए हैं और यहां तक कि फैक्टरी मालिक/ मैनेजर मज़दूरों के गुस्से का शिकार बन रहे हैं।

पर श्री ज्योति बसु की नजर में अब यह सब कुछ गुंडागर्दी है। उनका कहना है "लड़ाकू ट्रेड यूनियनवाद एक भूल है। घेराव, हड़ताल तथा अन्य तरह की गुंडागर्दी बंगाल में बदल रहे औद्योगिक परिदृश्य के अनुकूल नहीं है।" ज्योति बसु के इस बयान से बिल्ली एकदम थैले के बाहर आ गयी है। वह मज़दूर आन्दोलनों को गुंडागर्दी का नाम तो दे रहे हैं, मगर इन आन्दोलनों के कारणों की चर्चा नहीं करते। और बदलते औद्योगिक परिदृश्य के शगूफे से मज़दूरों को भरमाना चाहते हैं, यह कुछ और नहीं बल्कि मुनाफे के लिए पूंजीपतियों की बढ़ी हुई अन्तहीन हवस ही है, जो मज़दूरों के खून की हर बूंद को सिक्कों की खनखन में बदल देने पर आमादा है।

सी.पी.आई., सी.पी.एम. तथा इन जैसे अन्य संशोधनवादी जनता को भ्रमित करने के लिए दिखावे के तौर पर तो आर्थिक सुधारों का विरोध कर रहे हैं मगर जहां कहीं भी इनकी हुकूमतें हैं वहां इन्हीं सुधारों को जोर-शोर से लागू कर रहे हैं। श्री बसु का कहना है कि "हमें बदलते समय के साथ चलना होगा।" सच तो यह है कि श्रीमान बसु बहुत पहले ही समय के साथ बदल चुके हैं। और अब इनके उत्तराधिकारी बुद्धदेव भट्टाचार्य तो बसु से भी अच्छे पूंजीपतियों के सेवक साबित हो रहे हैं। यह अनायास ही नहीं कि बंगाल के उद्योगपति आजकल बुद्धदेव भट्टाचार्य को "व्यावहारिक कम्युनिस्ट" के खिताब से नवाज रहे हैं।

ये वामपंथी संसदीय मदारी आज खुलकर पूंजीपतियों की सेवा में उतर आये हैं। मगर अभी भी मज़दूरों को धोखा देने के लिए कम्युनिस्टों का लेबल लगाये हैं, और लाल झण्डा उठाये हुए हैं। मज़दूरों को लाल झंडे के इन गद्दारों की असलियत पहचाननी होगी। मज़दूर जमात में इन गद्दारों के असल चेहरे को नंगा किये बिना भारत का मज़दूर आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सकता।

● हरजीत

(पेज 1 से आगे)

चुनावी राजनीति में उठा-पटक

जाती है ताकि जनता की रहनुमाई का दावा एकदम फर्जी न बन जाये। लेकिन इस बात का हरदम पूरा ख्याल रखा जाता है कि कहीं सचमुच ये मुद्दे न-बन जाये। भगवा ब्रिगेड यदि 'हिन्दू राष्ट्रवाद' या 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का जहरीला धुंआ उड़ाकर इन मुद्दों को ओझल कर रही है तो तथाकथित धर्मनिरपेक्ष गोलबन्दियां भी यही काम अपने ढंग से कर रही हैं। इसी एक मुद्दे पर तो सभी संसदीय बांकों की एक राय है- जनता रोजी-रोटी और इज्जत के सवाल को लेकर सड़कों पर न उतरने पाये!

फिलहाल, देश का मेहनतकश अवाम चुनावी राजनीति के इस घिनौने नजारे को नफरत की निगाह से देख रहा है। अकसर वह चुनावी छलियों के झांसे में भी फंस जा रहा है लेकिन आखिर कब तक? जब बदबू नाक में इस कदर घुसी जा रही हो कि उसे पैदा करने वाली गन्दगी को मिटाना जीने की शर्त बन जाये तो वह आखिरकार तो मिटा ही दी जाती है चुनावी राजनीति की सड़न से निकलने वाली बदबू आज ऐसी ही हो चुकी है। यह बदबू देश की पूंजीवादी व्यवस्था की सड़न से पैदा हो रही है जो अब साम्प्रदायिक फासीवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद जैसी गन्दगियों को ही पैदा कर सकती है इसे साफ करने के लिए फौलादी झाड़ू चाहिए और मेहनतकशों की एकता ही वह फौलाद है जिससे यह झाड़ू बनाया जा सकता है।

असंगठित मज़दूरों को भरमाने के लिए श्रम मंत्री के घड़ियाली आंसू।

असंगठित मज़दूरों को हमेशा "असंगठित" ही बनाये रखना चाहती है सरकार

असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के हालात पर पिछले दिनों कई सरकारी बयान बुर्जुआ मीडिया ने उछाले हैं। इनसे तो ऐसा लगाता है कि जैसे असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की तकलीफ सरकार से देखी न जा रही हो और वह इन मज़दूरों के हालात में सुधार के लिए कुछ कर गुजरना चाहती हो। संसद में केन्द्रीय श्रम मंत्री ने पिछले माह बयान दिया कि असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की सामाजिक सुरक्षा के लिए सरकार अगले बजट सत्र में एक विशेष विधेयक लायेगी। दूसरे श्रम आयोग की सिफारिशों में भी इस संबंधो में खूब जलेबी पारी गयी है। श्रम आयोग ने अपनी रिपोर्ट में मज़दूरों की सामाजिक सुरक्षा के नाम पर बातें तो बहुत बनाई हैं, लेकिन कोई ठोस सुझाव नहीं दिये हैं।

देखा जाय तो आजादी के बाद से अब तक मुनाफाखोरों की चाकरी कर रही सरकारों ने असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के हित में कोई ठोस कदम उठाया ही कब था? अब तो खुल्लमखुल्ला देशी-विदेशी पूंजी के सामने दुम हिला रही सरकार से क्या उम्मीद की जाय! मज़दूरों ने लड़कर न्यूनतम मज़दूरी घोषित करने के लिए सरकारों को बाध्य किया। लेकिन किसी भी क्षेत्र में देख लें, असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिलती और हकों की क्या बात की जाय? क्या इस नंगी सचाई से श्रम मंत्री या श्रम आयोग वाकिफ नहीं है? दरअसल केन्द्रीय श्रम मंत्री की असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के प्रति दीख रही दरियादिली सिर्फ एक ढोंग है और इसके पीछे असलियत कुछ ही है।

असलियत यह है कि ये सत्ताधीश और कुछ नहीं पूंजी के चाकर हैं। चाकरी करते हुए ये इतने पक चुके हैं, इतने शातिर हो चुके हैं कि इन्हें दिखाई पड़ रहा है कि आने वाले दिनों में असंगठित क्षेत्र के मज़दूर एक राजनीतिक शक्ति के रूप में एक चुनौती बन सकते हैं। एक ऐसा तूफान बन सकते हैं, जो पूरी पूंजीवादी व्यवस्था की चूलों को हिला दें। इसीलिए हमारे हुक्मरान भविष्य से निबटने के लिए अभी से तैयारियां कर रहे हैं। वह एक कानूनी भ्रमजाल खड़ा करना चाहते हैं, ताकि असंगठित क्षेत्र के मज़दूर ठीक उसी तरह कानूनवाद के दलदल में उलझे रहें जैसे उन्होंने संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को उलझाये रखा। वह उनकी राजनीतिक चेतना को अभी से कुंद कर देना चाहते हैं, वह भविष्य में उठने वाले तूफानों के वेग को कम कर देने का अभी से पुख्ता इंतजाम कर लेना चाहते हैं। इसके लिए वह चौतरफा सावधानी बरत रहे हैं, फूंक-फूंक कर कदम रख रहे हैं और मज़दूर वर्ग पर एक के बाद एक हमले कर रहे हैं।

सरकार संगठित क्षेत्र के मज़दूरों के हकों को छीन रही है और उन्हें असंगठित क्षेत्र में धकेल रही है। निजीकरण-उदारीकरण द्वारा संगठित क्षेत्र से मज़दूरों की छंटनी की जा रही है। ठेका प्रथा को बढ़ावा दिया जा रहा है। न्यूनतम कानूनी हकों को भी छीन लेने के लिए नये श्रम कानून बनाये जा रहे हैं। लुटेरे अपने कुकृत्यों को छिपाने के लिए यह दुष्प्रचार कर रहे हैं कि संगठित क्षेत्र के मज़दूरों ने असंगठित मज़दूरों के हकों को छीना है, लिहाजा संगठित क्षेत्र के मज़दूरों के हकों को छीना जा रहा है। मज़दूर के बुनियादी हकों पर पाटा चलाया जा रहा है। 'हायर एण्ड फायर' की नीति हर क्षेत्र में लागू की जा रही है। जब सरकार असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की रक्षा की बात करती है तो इसे मध्यवर्ग के कुछ 'भलेमानुष' तो भ्रम का शिकार हो सकते हैं, लेकिन दिहाड़ी पर खटने वाले मज़दूरों को क्या भ्रम? सरकार एक ऐसा भ्रमजाल खड़ा कर रही है, जिसमें फंसकर मज़दूर अपनी आर्थिक-राजनीतिक लड़ाई के लिए गोलबन्द न हो सकें। असंगठित शब्द को इतना प्रचारित किया जा रहा है कि मज़दूरों की बड़ी आबादी को लगे कि वह संगठित हो ही नहीं सकती। उसे तो सरकार और फैक्ट्री मालिक की दया पर निर्भर रहना है। यही भूमण्डलीकरण की रणनीति है कि मज़दूरों को संगठित न होने दिया जाय। उसकी असेम्बली लाइन को बिखेर दिया जाय। ठेका दर ठेका अलग-अलग ठेकेदारों के मातहत काम करने वाले मज़दूर कभी एक न हो सकें। लेकिन जब जिन्दगी के दुख-दर्द एक हों, एक ही मकड़जाल में सब फंसे हों पूंजी का दैत्य सबके सिर पर सवार हो, तो यह कैसे हो सकता है कि मज़दूर संगठित न हों, मज़दूर संगठनकर्ताओं को वह रास्ता खोजना ही होगा। परन्तु अहम प्रश्न फिर भी रह जाता है कि यदि मज़दूर संगठित हो गये तो बेचारे श्रम मंत्री का क्या होगा जो असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों का ही "कल्याण" करने पर आतुर हैं?

जीने के अधिकारों से भी वंचित हैं लुधियाना के औद्योगिक मज़दूर

सुखदेव

पंजाब की औद्योगिक राजधानी लुधियाना, जिसे पंजाब का मैनचेस्टर भी कहा जाता है, आज देश के बड़े औद्योगिक केन्द्रों में से एक है। लुधियाना पूरे देश में अपने होजरी उद्योग के लिए मशहूर है। होजरी के अलावा यहां पर बड़े पैमाने पर साइकिल तथा स्टील उद्योग भी है। पिछले एक दशक में लुधियाना का उद्योग और भी पला-बढ़ा है। लुधियाना चंड़ीगढ़ तथा लुधियाना अम्बाला रोड पर जो दूर-दूर तक बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियां नज़र आती हैं, इनमें से ज्यादातर पिछले दशक में ही लगी हैं।

पूंजीवादी विकास के नियमों में से एक है पूंजी का असमान विकास। पूंजीवादी विकास के इसी नियम का दूसरा पहलू है कि जैसे-जैसे अलग-अलग जगहों पर पूंजी का केन्द्रीकरण बढ़ता है, उन जगहों पर पूंजी के निर्माता उजरती गुलामों का भी केन्द्रीकरण बढ़ता जाता है। लुधियाना में बढ़ते औद्योगीकरण ने लाखों मजदूरों को देश के दूर-दराज कोनों से खींचकर लुधियाना की गंदी बस्तियों में ला इकट्ठा किया है। इन लाखों मेहनतकश हाथों की बदौलत ही लुधियाना में उद्योगों का जाल फैला है, पूंजीपतियों के घरों में दौलत के अम्बार लगे हैं। इन मजदूरों की मेहनत की बदौलत ही लुधियाना के कई उद्योगपतियों ने देश के अन्य राज्यों में भी अपने साम्राज्य का विस्तार किया है। वर्धमान, ओसवाल तथा हीरो जैसे बड़े-बड़े औद्योगिक घराने बने हैं। लेकिन इस औद्योगिक विकास का फल मजदूरों को नहीं मिला है, मजदूरों को अगर कुछ मिला है तो बस शोषण-उत्पीड़न तथा अपमान।

पूरे देश के ज्यादातर औद्योगिक केन्द्रों की तरह लुधियाना के उद्योगों में काम करने वाले ज्यादातर मजदूर उत्तर प्रदेश तथा बिहार से आते हैं। यू.पी. बिहार की भयानक गरीबी से तंग आकर, सूखे तथा बाढ़ के सताये हुये ये लाखों मजदूर एक अच्छी जिन्दगी का सपना लेकर देश के औद्योगिक महानगरों की तरफ भागते हैं। मगर जल्दी ही इनके सपने चकनाचूर हो जाते हैं जब शहरी जिन्दगी की क्रूर सच्चाइयों से इनका सामना होता है। देहात के किसानी जीवन को छोड़कर शहरों में आने पर शहरी जीवन शैली, प्रदूषित पर्यावरण, तथा फैक्ट्रियों के दम घोंटने वाले माहौल के अनुकूल खुद को ढालने में इन्हें खासी परेशानी झेलनी पड़ती है।

लुधियाना की लगभग सभी फैक्ट्रियों में काम की कोई गारंटी नहीं है। रोजगार की अनिश्चितता की तलवार हरवक्त मजदूरों के सिरपर लटकती रहती है। कुछ एक बड़ी मिलों को छोड़कर बाकी सभी मिल मालिक मजदूर को न तो कोई पहचान पत्र देते हैं न हाज़री कार्ड और न ही वर्दी। यानी वह मज़दूर को ऐसा कोई भी सबूत नहीं देते जिससे यह साबित हो सके कि कोई मज़दूर उसकी फैक्ट्री में काम करता है, इस बात का मालिक बहुत हो नाजायज फायदा उठाते हैं। लुधियाना की छोटी फैक्ट्रियों में तो आम चलन है कि कई-कई महीने काम करवाकर अक्सर मालिक मजदूरों को बिना तनख्वाह दिये कारखाने से बाहर कर देते हैं। ऐसे में अगर मजदूर लेबर कोर्ट जाना चाहे तो उसके पास ऐसा कोई सबूत नहीं होता जिससे वह साबित कर सके कि वह किस फैक्ट्री में काम करता था। कोर्ट में जाने पर भी बहुत कम मजदूरों को ही कोई फायदा हो पाता है। केस अक्सर कई-कई साल तक चलते रहते हैं, जिसमें तारीख पर जाने के लिए मजदूर को अपनी दिहाड़ी छोड़नी पड़ती है। ऐसे में जितना पैसा उसे केस लड़कर मिलता है, उतना ही उसका नुकसान हो जाता है। इसलिए ज्यादातर मजदूर कोर्ट जाते ही नहीं।

आठ घंटे का काम यहां पर गुज़रे जमाने की बात बनती जा रही है। तेज़ी के दिनों में मजदूरों से जबरदस्ती 12 घंटे या इससे भी अधिक काम लिया जाता है। बड़ी स्टील फैक्ट्रियों में यह आम चलन है कि जो मजदूर 12 घंटे काम करने को तैयार नहीं होता उसे काम ही नहीं मिलता। हालांकि मजदूर से आठ घंटे से अधिक जो भी काम लिया जाता है। मालिक उसे ओवरटाइम का नाम देते हैं। मगर यह सिर्फ नाम का ही ओवर टाइम होता है, क्योंकि ओवर टाइम का दुगुना मेहनताना नहीं दिया जाता। और मंदी के दिनों में मजदूरों का कोई पुरसाहाल नहीं होता, होजरी उद्योग में तो जनवरी महीना आते-आते कई होजरियां बंद हो जाती हैं। तथा फिर मार्च-अप्रैल में ही चालू होती हैं। मंदी की सबसे ज्यादा मार मजदूर को ही झेलनी पड़ती है। इन दिनों में ज्यादातर मजदूरों को तो काम मिलता ही नहीं, और जिनको मिलता है उन्हें बहुत ही कम समय का काम मिलता है। इससे मज़दूरों का महीने भर का खर्च भी पूरा नहीं हो पाता। लुधियाना में साल भर में तेजी तथा मंदी का एक चक्र जरूर पूरा होता है।

तेजी के दिनों में जब मालिकों को जरूरत होती है तो वे मजदूर को अधिक से अधिक निचोड़ लेना चाहते हैं। इस समय में मालिक मजदूरों को फैक्ट्रियों में रहने के लिए मजबूर करते है, चार-चार, पांच-पांच दिनों तक मजदूरों को फैक्ट्रियों के अंदर ही जानवरों की तरह कैद करके रखा जाता हैं रोटी के लिए मालिक कुछ पैसे दे देते हैं तथा मजदूरों को सोने के लिए बहुत ही कम समय मिल पाता है। उनसे लगातार अधिक से अधिक काम लिया जाता है। होजरी उद्योग में यह चलन ज्यादा है। रात को मालिक घर जाते समय फैक्टरी गेट को बाहर से ताला लगा जाते हैं। क्योंकि उनको डर होता है कि उनकी गैरहाजिरी में मजदूर कुछ चुरा न ले जायें। अगर रात के समय आप होजरी उद्योग के इलाकों में घूमें तो जगह-जगह यह दृश्य नजर आयेगा। इस सूरत में मजदूरों के साथ कोई हादसा हो जाये या कोई बीमार पड़ जाये तो उनकी जान बचने की उम्मीद कम ही होती है।

छोटी फैक्टरियों में तो हर रोज यही होता है कि रात के समय मालिक फैक्टरी को बाहर से ताला लगाकर घर को चले जाते हैं जबकि अन्दर काम चल रहा होता है। कई बार रात की शिफ्ट में काम करने वाले मजदूरों का काम सुबह पांच-छः बजे तक खत्म हो जाता है, मगर फैक्टरी का ताला 9-9.30 बजे तक खुलता है। ऐसे में कई-कई घंटे मजदूरों को बिना वजह ही फैक्टरी में बंद रहना पड़ता है।

न्यूनतम मजदूरी कानून जैसी भी कोई चीज यहां नहीं है। यहां हर मालिक का अपना कानून है। अपनी मर्जी से वह मजदूरों से काम लेता है और मर्जी के मुताबिक तनख्वाह देता है। इन दिनों बड़ी-छोटी फैक्टरियों में मजदूरों पर काम का बोझ बहुत ज्यादा बढ़ गया है। एक-एक मजदूर से दो-दो तीन-तीन आदमियों का काम लिया जा रहा है। जबकि मजदूरों की तनख्वाह लगातार कम होती जा रही है। होजरियों में तो ज्यादातर पीस रेट पर काम होता है। अगर कोई मजदूर 12 घंटे जान मारके काम करता है और दिहाड़ी बना लेता है तो यह मालिकों को बर्दाश्त नहीं होता।

वह प्रति पीस रेट कम कर देते हैं। ऐसे में मजदूरों को उतनी ही दिहाड़ी बनाने के लिए और अधिक मेहनत करनी पड़ती है। कई फैक्टरियों में काम ठेकेदारों के माध्यम से होता है। मजदूरों में से ही कोई एक मजदूर ठेकेदार बनकर मजदूरों के शोषण में भागीदार बन जाता है। जब मालिक यह देखता है कि मजदूर बहुत कम तनख्वाह पर काम कर रहे हैं और ठेकेदार की मोटी कमाई हो रही है तो मालिक ठेकेदार की छुट्टी कर देते हैं और उतनी ही तनख्वाह पर खुद मजदूरों से काम लेने लगते हैं।

अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए मालिक आम तौर पर जो एक और

(पेज 10 पर जारी)

"उदारीकरण" से लदी-फंदी दसवीं पंचवर्षीय योजना का "विकास" लक्ष्य तय

मुनाफा केन्द्रित व्यवस्था में मानवकेन्द्रित योजना भला क्यों?

मुकुल

"उदारीकरण" से लदी-फंदी देश की दसवीं पंचवर्षीय योजना अन्ततः तैयार हो गयी। योजना आयोग के अध्यक्ष के तौर पर आयोग की पूर्ण बैठक में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा है कि भारत के सम्मुख इस समय सबसे बड़ी चुनौती सदियों पुराने गरीबी-उन्मूलन और अल्पविकास लक्ष्यों की पूर्ति नहीं है अपितु विकास को बेहतर एवं अधिक संतुलित बनाने की है।

योजना आयोग जिस दसवीं योजना को एक "माडल" के रूप में प्रस्तुत कर रहा है और जिस पर "विकास" का नेटवर्क बिछाने की बात कर रहा है, प्रधानमंत्री ने उसकी हकीकत का बयान कर दिया है, यानी भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती सदियों पुराने गरीबी उन्मूलन की पूर्ति नहीं हैं और आज के दौर की यही सच्चाई है।

आज़ादी के बाद के शुरुआती दौर में गरीबी उन्मूलन की बात कहना और इसे पंचवर्षीय योजना का अंग बनाना सरकारों की मज़बूरी थी। धीरे-धीरे यह मुद्दा गायब होने लगा। दो दशक पूर्व यह चुनावी मुद्दा भी नहीं रह गया। 12 वर्ष पूर्व अपने प्रधानमंत्रित्व काल में चन्द्रशेखर ने जनता से 'पेट पर पट्टी बांधने' का आह्वान किया था। उसके बाद चली "उदारीकरण" की नैय्या जैसे-जैसे हिचकोले खाकर आगे बढ़ती गयी, गरीबी बढ़ती गयी और यह मुद्दा विलीन होता गया। अब जबकि उदारीकरण का घोड़ा बेलगाम होकर दौड़ने लगा है तो बड़े ही बेहयाई के साथ प्रधानमंत्री 'बेहतर अधिक संतुलित विकास' की यह अवधारणा प्रस्तुत कर रहे हैं।

बहरहाल, अब "मॉडल" रूपी दसवीं पंचवर्षीय योजना की भी हकीकत देखी जाये। इस योजना के तहत 8 प्रतिशत विकास दर हासिल करने का लक्ष्य रखा गया है। तीन खण्डों वाली दसवीं योजना रपट में आगामी 10 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय दोगुना करने की बात की गयी है। आगामी पांच वर्षों का लक्ष्य सामने रखते हुए रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2007 तक गरीबी का स्तर 26 प्रतिशत से घटाकर 21 प्रतिशत होगा, बढ़ती श्रमशक्ति के अनुपात में कारगर रोजगार के अवसरों में वृद्धि, 2003 तक सभी बच्चों की स्कूल में भर्ती और 2007 तक वे सभी बच्चे पांच वर्ष की स्कूली शिक्षा पा लेंगे, स्त्री-पुरुष के बीच शिक्षा व वेतन से बढ़ाकर 2007 तक 75 प्रतिशत कर लाना, सभी गांवों तक शुद्ध पेयजल की व्यवस्था, शिशु मृत्युदर 1999-2000 के 72 प्रतिशत से घटाकर 45 प्रतिशत और माता मृत्युदर 4 प्रतिशत से घटाकर 2 प्रतिशत पर लाना है आदि।

अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योजना आयोग के सदस्य डा. के. वेंकटसुब्रह्मण्यन का सुझाव है कि कराधार का विस्तार करके जमाओं में वृद्धि की जाए, कर संबंधी प्रोत्साहन एवं छूटें वापस की जाएं, केन्द्र व राज्यों में समन्वित मूल्य संवर्धित कर प्रणाली (वैट) लागू की जाए, सरकारी कर्मचारियों की संख्या घटाई जाये तथा सब्सिडी एवं प्रशासनिक खर्चों में यथासंभव कटौती की जाये और इस संबंध में विजय केलकर समिति की रिपोर्ट लागू हो।

योजना के दस्तावेजों में सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश कार्यक्रम को और तेज करने की वकालत करते हुए निजी निवेश को बढ़ावा देने की राह में अब तक बाधक बनते आ रहे सभी नियम-कायदों में जरूरी संशोधन करने के महत्व को रेखांकित किया गया है। दस्तावेज कहता है कि संगठित निजी कंपनी क्षेत्र इस समय मांग के अभाव में फालतू पड़ी क्षमता का उपयोग बढ़ाकर अपनी बचत दर से काफी वृद्धि कर सकता है। दस्तावेज में योजना के प्रारंभिक वर्षों में बुनियादी क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश बढ़ाने के लिए सार्वजनिक उपभोग खर्च कम करने का प्रस्ताव है। इसके लिए ऋण बोझ व ब्याज दरें कम करने, पेंशन योजना को सुधारकर उसे स्ववित्त पोषित बनाने, सरकारी कर्मचारियों की संख्या में दो प्रतिशत वार्षिक कटौती, सब्सिडी के बोझ के लिए कठोर कदम उठाने का आह्वान किया गया है।

अब तक की यह पहली योजना है जिसमें सार्वजनिक निवेश का हिस्सा बढ़ाने की बात नहीं कही गयी है। दस्तावेज में इस बात पर जोर दिया गया है कि बाजार निर्देशित अर्थव्यवस्था में संसाधन उपयोग-क्षमता में सुधार आर्थिक वृद्धि दर में तेजी के लिए आवश्यक है।

आयोग द्वारा देश के बुनियादी सुविधा क्षेत्र में निजी निवेश को बढ़ाने की वकालत की गयी है। उसका मानना है कि परिवहन

(पेज 10 पर जारी)

समयपुर बादली में ब्वायलर फटने से 9 मज़दूरों की मौत

दुर्घटना नहीं हत्या, मुनाफे की हवस के हाथों

(बिगुल संवाददाता)

मजदूर की जिन्दगी को दांव पर लगाकर पैसा बटोरने की धनपशुओं की घिनौनी चाह ने एक और हत्याकांड रच डाला। 27 दिसम्बर की सुबह देश की राजधानी दिल्ली के समयपुर बादली क्षेत्र में मुनाफे की अंधी हवस ने नौ लोगों की जान ले ली। जाहिर है मरने वाले गरीब थे, दो जून की रोटी जुटाने के लिए मज़दूरी करते थे। कारण वही थे जिनके चलते देश के विभिन्न भागों से आये दिन कारखानों-खदानों से मजदूरों की मौत की खबरें आती हैं, जिन्हें सभ्य समाज दुर्घटना का नाम देकर चुप्पी साध लेता है। सरकार कुछ रुपये फेंककर पल्ला झाड़ लेती है। भ्रष्ट अफसर-नेता-मालिक गंठजोड़ साफ बच निकलता है।

समयपुर बादली में भी यही हुआ। सुरक्षा मानकों और श्रम कानूनों की धज्जियां उड़ाकर चल रहे शीशा बनाने के एक कारखाने में (फैक्ट्री नं. 75) में बायलर फट पड़ा, जिसकी वजह से आग लगते ही फैक्ट्री का एक हिस्सा भरभरा कर गिर गया। नौ लोग मारे गये, जिसमें पांच फैक्ट्री के ही मजदूर थे। कई लोग घायल हो गये। मरने वालों में एक महिला और दस साल का बच्चा शामिल है, जो पास के मकान में रहते थे। घटना की खबर पाते ही फैक्ट्री मालिक खन्ना परिवार सहित घर से फरार हो गया।

घटना के बाद पुलिस-प्रशासन ने वही फूहड़ नाटक दोहराया, जैसा उसे ऐसे हादसों के वक्त करने की आदत पड़ चुकी है। दिल्ली के श्रम मंत्री ने अन्य अफसरान के साथ मौके का मुआइना किया। मृतकों और घायलों को मुआवजा देने की घोषणा की और दुर्घटना के कारणों की जांच करने के आदेश दे दिये। साथ ही, मंत्री ने गैरकानूनी रूप से चल रही इकाइयों का सर्वे करने का निर्देश दे दिया। पुलिस कारखाना मालिक की खोज में वैसे ही मुस्तैदी से जुट गई, जैसा धन्नासेठों के केस में वह करती रही है।

सवाल यह है कि इस हादसे के कारणों की तलाश कर दोषी व्यक्तियों पर हत्या का मुकदमा चलाया जायेगा? आखिर यह सीधे-सीधे हत्या का मामला नहीं, तो और क्या है? दिल्ली व इसके आसपास के किसी भी कारखाना क्षेत्र में चले जायें, ऐसे तमाम कारखाने मिल जायेंगे जहां मौत मुंह बाये खड़ी रहती है, जहां फैक्ट्री मालिक सुरक्षा इंतजामात के मद में कटौती कर, श्रम कानूनों की ऐसी-तैसी कर मुनाफा बटोर रहे हैं। इनमें से कई तो गैरकानूनी तौर पर चल रहे हैं। कौन इन तथ्यों को नहीं जानता? क्या श्रम मंत्री या श्रम विभाग इनसे अपरिचित हैं? क्या पुलिस-प्रशासन, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को यह सब नहीं पता? मौत का सामान जुटाकर पैसा पीट रहे कारखाना मालिक और भ्रष्ट नौकरशाही-नेता गंठजोड़ को यह पता होता है कि अगर हादसा हुआ तो कई जानें जा सकती हैं। यदि जानते-बूझते हुए यह सब हो रहा है, तो स्पष्ट तौर पर ऐसी घटनाओं को दुर्घटना कह खारिज नहीं किया जा सकता। यह सीधे-सीधे मानव वध है, जिसके दोषियों को सजा मिलनी ही चाहिए।

विशेष सामग्री

(बाइसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -8

पार्टी अनुशासन

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में बाइसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

- सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

पार्टी का संविधान यह मांग करता है: "समूची पार्टी के लिए एकीकृत अनुशासन को लागू करना अनिवार्य है: व्यक्ति संगठन के मातहत होता है, अल्पमत बहुत के मातहत होता है, और समूची पार्टी केन्द्रीय कमेटी के मातहत होती है।" पार्टी-अनुशासन कार्यदिशा के अमल को सुनिश्चित बनाने की, पार्टी की एकता को मजबूत बनाने और पार्टी के सुदृढ़ीकरण की, पार्टी के संगठनों को परिष्कृत बनाने की, सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ करने की तथा क्रान्ति में विजय हासिल करने की एक जरूरी शर्त है। प्रत्येक कम्युनिस्ट पार्टी सदस्य को सचेतन तौर पर अनिवार्यत: इस अनुशासन के मातहत होना चाहिए और इसे कायम रखना चाहिए।

अनुशासन लाइन के अमल को सुनिश्चित करता है

"अनुशासन कार्यदिशा के अमल की गारण्टी होता है, इसके बिना, पार्टी जन-समुदाय को और सेना को एक फतेहमन्द लड़ाई छेड़ने में नेतृत्व देने योग्य नहीं हो पाती" *(माओ त्से तुङ)*। अध्यक्ष माओ का यह निर्देश अनुशासन और कार्यदिशा के बीच के संबंध को गंभीरता से सामने लाता है, और पार्टी की लाइन को अमली जामा पहनाने तथा इसके जुझारू कार्यभारों को पूरा करने में क्रान्तिकारी अनुशासन के महत्व को दर्शाता है। पार्टी का सांगठनिक अनुशासन इसको राजनीतिक कार्यदिशा से निर्धारित होता है, और साथ ही, यह कार्यदिशा के अमल की गारण्टी देता है। अध्यक्ष माओ द्वारा परिभाषित समाजवाद की पूरी ऐतिहासिक अवधि के लिए पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा, एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा है, और यह हमारे सभी कामों के लिए मूलभूत उसूल है। सिर्फ इस कार्यदिशा पर अडिग रहकर ही पार्टी में सर्वहारा अनुशासन को मजबूत बनाना तथा **"चिन्तन, नीति, योजना, कमाण्ड और कार्रवाई की एकता"** सच्चे मायने में हासिल कर पाना संभव बनाया जा सकता है। इस कार्यदिशा से विचलित होने, और एक गलत कार्यदिशा लागू करने, का मतलब अनिवार्यत: पार्टी के सर्वहारा अनुशासन का ध्वंस करना तथा सर्वहारा वर्ग के ऐक्यबद्ध संकल्प की सारी बातों को निरर्थक बना देना होगा। यह अनुशासन और कार्यदिशा के बीच सम्बन्ध का एक पहलू है। दूसरी ओर, पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को लागू करने में सर्वहारा वर्ग और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय को नेतृत्व देने के लिए, हमारी पार्टी को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ. विचारधारा के आधार पर अपनी कतारों में केन्द्रीयता और एकता का ऊंचा स्तर सुनिश्चित बनाने के वास्ते, एक एकीकृत अनुशासन की आवश्यकता है। यदि पार्टी में एकीकृत अनुशासन नहीं होगा, यदि हर आदमी अपने हिसाब से काम करेगा और सिर्फ वही करेगा जो उसका दिल चाहेगा, यदि निर्देश और कार्रवाई की कोई एकता नहीं होगी, तो पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को अमल में लाना और पार्टी को सर्वहारा वर्ग के हरावल की भूमिका निभाने योग्य बनाना कठिन होगा।

सर्वहारा अधिनायकत्व की अवधि के दौरान, यह हमेशा से अधिक महत्वपूर्ण है कि पूरी पार्टी में एक एकल अनुशासन कायम रखा जाये। ऐसा इसलिए कि इस पूरी ऐतिहासिक अवधि के दौरान हमें प्रत्येक बुनियादी संगठन में सर्वहारा अधिनायकत्व के सुदृढ़ीकरण के कार्यभार को सही ढंग से अंजाम देना होगा, हमें समाजवादी निर्माण की गति को तेज करना होगा, अन्दरूनी स्तर पर पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकना होगा तथा बाहर से साम्राज्यवादियों और सामाजिक साम्राज्यवादियों के हमलों एवं तोड़फोड़ की कार्रवाइयों को नाकाम बनाना होगा; ऐसा सिर्फ सर्वहारा अनुशासन को मजबूत बनाकर ही किया जा सकता है। जैसा कि लेनिन ने निर्दिष्ट किया है: **"जो कोई भी सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लौह-अनुशासन को (खासकर इसके अधिनायकत्व के काल के दौरान)" थोड़ा-सा भी कमजोर बनाता है, वह वास्तव में सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध बुर्जुआ वर्ग की मदद करता है"** ("वामपंथी कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज़") । यह साफ तौर पर दिखलाता है कि सर्वहारा अधिनायकत्व के सुदृढ़ीकरण के लिए तथा पूंजीवाद की पुनर्स्थापना को रोकने के लिए हमें सर्वहारा वर्ग के लौह अनुशासन को लगातार मजबूत बनाना होगा। पार्टी के अनुशासन को कमजोर बनाने वाली हर कार्रवाई सर्वहारा वर्ग से लड़ने में वस्तुगत रूप से सिर्फ बुर्जुआ वर्ग की ही मददगार हो सकती है तथा वस्तुगत रूप से सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को कमजोर करने और यहां तक कि उसका ध्वंस करने का काम ही कर सकती है।

पार्टी अनुशासन का सुदृढ़ीकरण वह चीज़ है जिसकी अध्यक्ष माओ ने हमें बार-बार शिक्षा दी है। दूसरे क्रान्तिकारी गृहयुद्ध का के दौरान अध्यक्ष माओ ने **'पार्टी में गलत विचारों को सुधारने के बारे में'** नामक अपनी रचना में अति जनवाद की, संगठन को नकारने की तथा उन दूसरे नुकसानदेह रुझानों की कड़ी आलोचना की, जो पार्टी अनुशासन की जड़ खोदने का काम कर रही थीं। इस रचना में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि समूची पार्टी को पार्टी-प्रस्तावों का अनुपालन अनिवार्यत: करना चाहिए और इसके अनुशासन का आदर करना चाहिए। साथ ही, उन्होंने विस्तार से उस दिशा के बारे में बतलाया, जो विचारधारात्मक और सांगठनिक रूप से हमारी पार्टी और हमारी सेना के निर्माण में लागू की जानी चाहिए। जापान-विरोधी प्रतिरोध-युद्ध के दौरान अध्यक्ष माओ ने अपनी एक अन्य शानदार रचना **'उदारतावाद का विरोध करो'** लिखी जिसमें उन्होंने समूची पार्टी को यह शिक्षा दी कि किस प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद की क्रान्तिकारी स्पिरिट के सहारे नकारात्मक उदारतावाद पर जीत हासिल की जाये। कुओ-ताओ की अवसरवादी कार्यदिशा के विरुद्ध संघर्ष में हमारी पार्टी के अनुभवों का सार संकलन प्रस्तुत करते हुए अध्यक्ष माओ ने एक बार फिर एकीकृत पार्टी अनुशासन के महत्व पर बल दिया, और कुशाग्र ढंग से यह निर्दिष्ट किया कि: **"जो भी अनुशासन के अनुच्छेदों का उल्लंघन करता है वह पार्टी एकता को भंग करता है"** ('राष्ट्रीय युद्ध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका, संकलित रचनाएं, खण्ड-दो') मुक्ति युद्ध के दौरान भी, अध्यक्ष माओ ने यह घोषणा की **'सेना आगे बढ़ती है, उत्पादन आगे बढ़ता है। जब हमारे अनुशासन का बोध मजबूत हो जाता है, हम क्रान्ति में हमेशा फतेहमन्द रहते हैं"** ('पीकिंड. रिव्यू', अंक-6,3 फरवरी 1967)। इस तरह उन्होंने देशव्यापी विजय की ओर आगे बढ़ने में समूची पार्टी, सेना और जनता का मार्गदर्शन किया। पूरे देश की मुक्ति के बाद, अध्यक्ष माओ ने बार-बार पार्टी के अनुशासन को मजबूत बनाने की आवश्यकता पर बल दिया तथा आजादी और अनुशासन के बीच के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों पर रोशनी डाली। लिन प्याओ के पार्टी-विरोधी गुट को शिकस्त देने में पार्टी, सेना और जनसमुदाय को नेतृत्व देने के दौरान अध्यक्ष माओ ने "तीन करने योग्य और तीन न करने योग्य" के तीन बुनियादी उसूलों को सूत्रबद्ध किया तथा **"कतारों, जनसमुदाय, पार्टी सदस्यों और जनता को अनुशासन के तीन नियमों और आठ ध्यान देने योग्य बातों की शिक्षा देने"** (पीकिंड. रिव्यू, अंक-50, 10 दिसम्बर 1971) की आवश्यकता को निर्दिष्ट किया। इस मार्गदर्शन की मदद से, जतना लिन प्याओ पार्टी-विरोधी गुट के, पूंजीवादी पुनर्स्थापना के षडयंत्र को पूरी तरह से कुचल देने में कामयाब हुई। स्वयं अध्यक्ष माओ द्वारा दिये गये प्रशिक्षण के परिणामस्वरूप, अनुशासन के प्रति दृढ़ आदर की भावना, लम्बे क्रान्तिकारी संघर्ष के दौरान, हमारी पार्टी की शानदार परम्परा तथा दुश्मन को पराजित करने और अपनी एकता को मजबूत बनाने वाला एक शक्तिशाली हथियार बन चुकी है।

पार्टी की मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा को बदलने और अपनी गुप्त फूटपरस्त गतिविधियों को चलाने के लिए सभी अवसरवादी कार्यदिशाओं के नेताओं ने हमेशा की पार्टी अनुशासन का विरोध करने के प्रत्येक साधन का इस्तेमाल किया है और इसे क्षतिग्रस्त करने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखा है। हमारी पार्टी के समूचे इतिहास के दौरान, छन-तू-श्यू, वाङ. मिङ. और चाङ. कुओ-ताओ से लेकर ल्यू शाओ-ची, लिन प्याओ और इस तरह के अन्य सभी ठगों तक, ऐसे सभी लोगों ने ऐसा ही आचरण किया है।, ये सभी गुटपरस्त, फूटपरस्त और लुटेरे थे जो पार्टी अनुशासन का ध्वंस कर देना चाहते थे। जहां तक लिन प्याओ और उसके पार्टी-विरोधी गुट का सम्बन्ध है, एक ओर उन्होंने उन्मादी ढंग से पार्टी के केन्द्रीकृत अनुशासन को छिन्न-भिन्न किया, एक बुर्जुआ हेडक्वार्टर संगठित किया, अध्यक्ष माओ के नेतृत्व वाली केन्द्रीय कमेटी का विरोध किया, तथा पार्टी में तोड़-फोड़ के जरिये सत्ता पर कब्जा जमाने की कोशिश की; तो दूसरी ओर, अपने पार्टी-विरोधी गुट के भीतर, पार्टी अनुशासन का आदर करने के नाम पर उन्होंने बड़े पैमाने पर फासिस्ट अनुशासन लागू किया। इन सबका मकसद पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा का विरोध करना और एक प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी कार्यदिशा को लागू करना था। हमें लिन प्याओ एण्ड कम्पनी के अपराधों की गहन आलोचना की प्रक्रिया चलानी होगी जिन्होंने पार्टी अनुशासन को क्षतिग्रस्त किया, और हमें इस अनुशासन को ठोस एवं सुदृढ़ बनाने के लिए ज़ान खपाना होगा।

(क्रमशः)

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा
- लेनिन (5/-)

मकड़ा और मक्खी
-बिल्हेल्म लीब्कनेख्त (2/-)

ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके
-सर्जी रोस्तोवस्की (2/-)

अनवश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं (10/-)

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (12/-)

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 19 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेंजे :

जनचेतना, डी-68, निरालानगर, आईटी चौराहा, लखनऊ

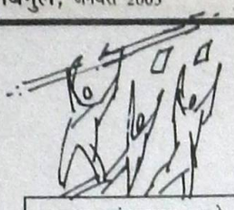

तुम्हारी क्षय

● राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेहनीड़ों में बैठे कागज पर रोशनाई फिराया करते हैं। राहुल सांकृत्यायन हमेशा जनता के संघर्षों के बीच रहे। गोराशाही के खिलाफ संघर्ष का मोर्चा हो या सामन्तों-जमीन्दारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मोर्चा हो, वह हमेशा अगली कतारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएं झेलीं। जमीन्दारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला भी किया लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी कलम रुकी। राहुल सांकृत्यायन यूरोपीय पुनर्जागरण काल के उन महामानवों सरीखे महामानव थे जो एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में तलवार लेकर लड़ते थे।

दुनिया की छत्तीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन, पुरातत्व नृतत्वशास्त्र, साहित्य-भाषा विज्ञान आदि विषयों पर वह अधिकारपूर्वक लिखते थे। उन्होंने उपन्यास कहानी, नाटक, ललित निबन्ध , जीवनी, आत्मकथा डायरी आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अधिकारपूर्व लेखनी उठायी। वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों, बाइसवीं सदी आदि पचास से अधिक रचनाएं उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपने आप करा देती हैं।

लेकिन राहुल जी के लिए ज्ञान कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी और न ही वे विद्वान कहलाने के लिए लिखते थे। देश की शोषित-उत्पीड़ित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आजाद कराने के लिए कलम को वह हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी हैं वह सिपाही भी है और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन और कर्म एक सतत प्रवहमान धारा के समान था। गति उनके लिए जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध एवं मृत्यु जड़ता इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। यह अकारण नहीं था। कि घुमक्कड़ी उनके स्वभाव में रच-बस गयी थी। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ भूगोल की पहचान करना नहीं थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व इसकी संस्कृतियों से उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राएं करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं-परम्पराओं के खिलाफ उनका मन गहरी नफ़रत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके खिलाफ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। जनता के ऐसे ही सच्चे सपूत महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तिका तुम्हारी क्षय बिगुल के पाठकों के लिए हम धारावाहिक रूप से इस अंक से प्रकाशित कर रहे हैं। राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रुढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है।

- सम्पादक

मनुष्य सामाजिक पशु है। मनुष्य और पशु में अन्तर यही है कि मनुष्य अपने हित और अहित के लिए अपने समाज पर अधिकतर निर्भर रहता है। वस्तुतः पशु-जगत् के बड़े-बड़े बलिष्ठ शत्रुओं के रहते तथा समय-समय पर आने वाले हिमयुग जैसे महान प्राकृतिक उपद्रवों से बचने में उसके दिमाग ने जो सहायता दी है, उसमें मनुष्य का समाज के रूप में संगठन बहुत भारी सहायक हुआ है। समाज ने पहले कमजोर मनुष्य की शक्तियों को सैकड़ों व्यक्तियों की एकता द्वारा बहुत बढ़ा दिया और तभी वह अपने प्राकृतिक और दूसरे शत्रुओं से त्राण पा सका, लेकिन आज उस समाज ने प्राकृतिक और पशु-जगत के दूसरे शत्रुओं से रक्षा पाने में मदद देते हुए भी अपने भीतर से ऐसे शत्रुओं को पैदा कर दिया है जिन्होंने कि उन प्राकृतिक और पाशविक शत्रुओं से भी अधिक मनुष्य-जीवन को नारकीय बनाने का काम किया है।

समाज को अपने भीतर के व्यक्तियों के प्रति न्याय करना प्रथम कर्तव्य है। न्याय का मतलब यह होना चाहिए कि हर एक व्यक्ति अपने श्रम के फल का उपयोग कर सके। लेकिन आज हम उल्टा देखते हैं।

धन वह है जो आदमी के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। खाना, कपड़ा, मकान ये ही चीजें हैं जिन्हें कि वास्तविक धन कहना चाहिए। वास्तविक धन के उत्पादक वे ही हैं जो इन चीजों को पैदा करते हैं। किसान वास्तविक धन का उत्पादक है, क्योंकि वह मिट्टी को गेहूं, चावल, कपास के रूप में परिणत करता है। दो घंटे रात रहते खेतों में पहुंचता है। जेठ की तपती दुपहरी हो या माघ-पूस के सबेरे की हड्डी छेदने वाली सर्दी, वह हल जोतता है, ढेले फोड़ता है, उसका बदन पसीने तर-बतर हो जाता है, उसके एक-एक हाथ में सात-सात घट्टे पड़ जाते हैं, फावड़ा चलाते-चलाते उसकी सांस टंग जाती है, लेकिन तब भी वह उसी तरह मशक्कत किये जाता हैं क्योंकि उसको मालूम है कि धरती माता के यहां रिश्वत नहीं चल सकती- वह स्तुति-प्रार्थना के द्वारा अपने हृदय को खोल नहीं सकती। यह अकिंचन मिट्टी सोने के गेहूं, रूपे के चावल और अंगूरी मोतियों के रूप में तब परिणत होती है जब धरती माता देख लेती है कि किसान ने उनके लिए अपने खून के कितने घड़े पसीने दिये, कितनी बार थकावट के मारे उसका बदन चूर-चूर हो गया और कुदाल अनायास उसके हाथ से गिर गई।

गेहूं बना-बनाया तैयार एक-एक जगह दस-बीस मन रक्खा नहीं मिलता, वह पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस दानों के रूप में और वह भी अलग-अलग बालियों में छिपा सारे खेत में बिखरा रहता है। किसान उन्हें जमा करता है, बालियों से अलग करता है। दस-दस, बीस-बीस मन की राशि को एक जगह देखकर एक बार उसका हृदय पुलकित हो उठता है। महीनों की भूख से अधमरे उसके बच्चे चाह-भरी निगाह से उस राशि को देखते हैं। वे समझते हैं कि दुख की अंधेरी रात कटने वाली है और सुख का सबेरा सामने आ रहा है। उनको क्या मालूम कि उनकी यह राशि जिसे उनके माता-पिता ने इतने कष्ट के साथ पैदा किया उनके खाने के लिए नहीं है। इसके खाने के अधिकारी सबसे पहले वे स्त्री-पुरुष हैं जिनके हाथों में एक भी घट्टा नहीं है, जिनके हाथ गुलाब जैसे लाल और मक्खन जैसे कोमल हैं, जिनकी जेठ की दुपहरियां खस की टट्टियों, बिजली के पंखों या शिमला और नैनीताल में बीतती है। जाड़ा जिनके लिए सर्दी की तकलीफ नहीं लाता, बल्कि मुलायम ऊन और कीमती पोस्तीन के सारे बदन को ढंके इन लोगों के लिए आनन्द के सभी रास्ते खोल देता है। निठल्ले और निकम्मे ये बड़े आदमी-जमींदार, महाजन, मिल-मालिक, बड़ी-बड़ी तनखाहों वाले नौकर, पुरोहित और दूसरी सभी प्रकार की जोंके-किसान के कसाले की इस कमाई के भोजन का सबसे पहले हक रखती हैं।

मजदूर भोंपू लगते ही आंख मलते हुए कारखाने की ओर दौड़ता है। अभी कुछ दिनों पहले तक तो काम के घंटों का भी कोई निर्बन्ध न था और अब भी अधिक मजदूरों वाले कारखानों पर ही वह नियम लागू है। वहां तीन आने और चार आने रोज पर वह खटता है। इसी तीन-चार आने में उसे बीवी, तीन-चार बच्चों और बूढ़े मां-बाप की भी फिक्र करनी है। एक दिन भी निश्चित हो पेट भर खाना उसके लिए हराम है और उस पर से यदि वह बीमार पड़ गया तो नौकरी से जवाब। यदि बूढ़ा या अंग भंग हो गया तो आसमान के नीचे उसको और उसके बाल बच्चों को भीख देने वाला भी कोई नहीं। यही नहीं, कल तक कारखाना चौबीसों घंटे चल रहा था, आज मालिक के पास खबर आती है-चीजों का दाम गिर गया, अब उन्हें लागत दाम पर भी बाजार में कोई खरीदने वाला नहीं है। कारखाने में ताला लगा दिया जाता है। मजदूर, उसके बाल-बच्चे दाने-दाने के लिए बिलखने लगते हैं। जब उसे काम मिला था और मजदूरी मिलती थी। तब भी उसकी जिन्दगी नरक से बेहतर न थी और बेकारी तो जिन्दा ही मौत। ऐसी तकलीफों को सहते मजदूर तैयार करता है बढ़िया से बढ़िया कपड़े, चीनी मिठाइयां और हजारों तरह की सुख-विलास की सामग्रियां। वह अपने हाथों से खड़ा करता है बड़े-बड़े महल, बंगले, बाग, ठंढी सड़कें। लेकिन खुद उसके लिए क्या मिलता है? उसकी झोपड़ी शायद ही बरसात में साबित रहती हो। उसके बदन के लिए चीथड़े भी ढंकने के लिए नहीं मिलते। कितनी ही उसकी अपनी बनायी चीजें उसके लिए स्वप्न की सी मालूम होती हैं और मजदूर की हड्डियों, पसीने और चिन्ता से बनी इन चीजों का उपभोग कौन करता है? उनके खून के गारे से उठी अट्टालिकाओं में विहार कौन करता है? वही बड़ी-बड़ी जोंके-जमींदार, महाजन, मिल-मालिक, बड़ी-बड़ी तनखाहों वाले नौकर, पुरोहित।

किसान और मजदूर जिसके लिए अपनी जवानी धूल में मिलाते हैं, अपनी नींद हराम करते हैं, अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश करते हैं, वह उन्हें भूखा नंगा रख करके ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि पग-पग पर उन्हें अपमानित करना अपना कर्तव्य समझता हैं। किसान और मजदूर गरीब क्यों हैं? क्योंकि उन्होंने अपनी कमाई परिवार और बाल बच्चों को भूखा रखकर इन जोंकों को खुशी-खुशी दे दी है। उन्हीं के खून से मोटी हुई ये तोंदे गरीबी के लिए उन्हें लांछित करती हैं। उनकी भाषा में इन गरीबों के लिए अलग शब्द है। 'आप' की तो बात ही क्या, 'तुम' भी उनके लिए नहीं इस्तेमाल किया जा सकता। 'तू', 'रे', 'अबे' से ही उन्हें संबोधित किया जा रहा है। बुरी से बुरी गालियों को उनके लिए इस्तेमाल करना अमीरी की शान है। उनके ही कारण गरीबी का शिकार मजदूर और किसान उनके सामने चारपाई पर नहीं बैठ सकता, खड़ाऊं नहीं पहन सकता, छाता नहीं लगा सकता। गांव के किसान की इज्जत और जानोमाल जमींदार के हाथ में है। वह जैसे चाहता है, इसे नाक रगड़ने को मजबूर करता है।

यह तो हुई वास्तविक धन के उत्पादकों की अवस्था और जोंके? मजदूरों और किसानों की कमाई उनके लिए अर्पित है। वे इसके सोचने की परवाह नहीं करते कि उनकी लाखों की तहसील और मुनाफे का रुपया किस तरह प्राप्त किया गया। क्या वे कभी यह सोचने की तकलीफ करते हैं कि उस एक-एक रुपये को जमा करने के लिए किसान ने अपने बच्चों को कितनी बार भूखा रक्खा? कितनी माताओं ने अपने को नंगा रक्खा? कितने बीमारों ने दवा और पथ्य से महरूम रह कर अपने प्राण छोड़े? यदि उनको ऐसा ख्याल होता तो वे कभी दो हजार की फोर्ड कार की जगह तीस हजार का रोल्स-राइस खरीदना पसंद न करते, महीने में हजार-हजार रुपय मोटर के तेल में न फूंक डालते। हाकिमों की दावतों और विलास के जलसों में लाखों का वारा-न्यारा न करते।

यह सब अंधेर होते हुए भी किसी के कान पर जूं तक नहीं रेंगती। समाज के पंच कह उठते हैं, अमीर-गरीब सदा से चले आये हैं, अगर सभी बराबर कर दिये जायं तो कोई काम करना पसन्द नहीं करेगा, दुनिय के चलाने के लिए अमीर-गरीब का रहना जरूरी है। समाज की बेड़ियां जेलखाने की बेड़ियों से भी सख्त हैं। उन्हें आंखों से देखा नहीं जा सकता, लेकिन जहां समाज के कानून के खिलाफ चाहे वह कानून सरासर अन्याय पर ही अवलम्बित क्यों न हो- कोई बात हुई कि समाज हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है। कुएं में पानी है, जगत पर लोटा-डोरी रखी हुई है, एक तरफ मंदिर के आंगन में भक्तिभाव से झूम-झूम कर लोग रामायण पढ़ रहे हैं-

"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि के भजै सो हरि के होई।"

गीता हो रही है-

"विद्या विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पंडिता समदर्शिनः।।"

(विद्या और शील-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चांडाल सब में पण्डित लोग समदर्शी होते हैं)

महात्मा और पंडित लोग गद्गद् होकर अर्थ कर रहे हैं-

"जो है सो सब भगवान् की देन है, सियाराम मय सब जग जानी। करहु प्रणाम जोरि जुग पानी। चराचर जगत् सब भगवान के रूप हैं, जो है सो उसमें कोई भेद नहीं।"

मालूम होता है, चारों ओर समदर्शिता, विश्व-बन्धुत्व और प्रेम का महासमुद्र लहरें मार रहा है। उसी समय जेठ की दुपहरी में प्यास का मारा चमार आ जाता है, उसका कदम कुएं की ओर बढ़ता है, भक्तों में से कोई उसकी जात पहचानता है, कानाफूसी होती है, महात्मा और भक्ति रस में गद्गद् सभी श्रोताओं की त्योरियां चढ़ जाती हैं, आंखें लाल हो जाती हैं और सभी मानो जीते जी खा जाने के लिए उस निरपराध व्यक्ति की ओर दौड़ पड़ते हैं? उसका कसूर क्या? क्या कुएं से पानी पीना अपराध है? क्या समदर्शिता और विश्व-बन्धुता के वायुमण्डल में कुएं से पानी निकाल कर पी लेना महापाप है? और यह मंडली कुछ ही मिनटों पहले जिस राम को अलाप रही थी, उसके रहते क्या ऐसा करना उचित था? उन व्यक्तियों में से एक-एक से अलग-अलग पूछिए-

"तुम्हारे वचन और कर्म में, मन्तव्य और कर्त्तव्य में इतना अन्तर क्यों?"

घूम-फिर कर आप इसी नतीजे पर पहुंचेंगे कि समाज उनसे वैसा ही कराना चाहता है।

किसी ऊंची जात के माता-पिता की एक छोटी-सी लड़की है। समाज ने मजबूर किया है कि उसकी शादी आठ-दस बरस की उम्र तक हो जाय। ग्यारहवें बरस में वह लड़की विधवा हो जाती है। समाज कहता है, उसकी शादी नहीं हो सकती, अब जिन्दगी भर उसे ब्रह्मचर्य रहना और इन्द्रिय-संयम करना पड़ेगा। कैसा-ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-संयम?- जिसके पालन में विश्वामित्र और पराशर, ऋष्यश्रृंग और व्यास जैसे बड़े-बड़े ऋषि बिलकुल असमर्थ रहे। आज भी उसी विधवा लड़की का पचास साल का बूढ़ा बाप एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी से शादी को तैयार है। उसके पच्चीस वर्ष के भाई की स्त्री को मरे महीने से ज्यादा भी नहीं हुआ, लेकिन दूसरी शादी की बातचीत तय हो रही है। क्या समाज की अक्ल मारी गई है? क्या उसकी आंखों पर पर्दा पड़ गया है? क्या उसे मालूम नहीं है कि इस अबोध बालिका से जिन्दगी भर ब्रह्मचर्य और संयम की आशा रखना दुराशा मात्र है? क्या अपने पास-पड़ोस में प्रति वर्ष एक-दो गर्भ गिरते उसने नहीं देखे? इतने पर भी क्या वह नहीं समझ सकता कि यदि उस बालिका को खुलकर पुरुष-समागम का मौका नहीं दिया गया, तो वह छिप कर वैसा करेगी? खुलकर करने पर शायद वह रिश्ते और जाति का भी ख्याल करती, लेकिन छिप कर करने पर तो वह सबसे नजदीक के सम्बंधी के साथ भी नाता जोड़ सकती है। किसी जाति का पुरुष, जो उसे सुलभ है, उसके प्रेम का पात्र हो सकता है। इस गुप्त प्रणय का परिणाम वह जानती है, उसके लिए मृत्यु दण्ड से कम नहीं है। यदि गर्भ न गिराया जा सकता, तो उसे सबसे हल्की सजा यही मिलेगी कि उसके माता-पिता, भाई-बन्धु, खून के अत्यन्त नजदीकी संबंधी उसे किसी अनजान शहर में, किसी सुनसान जगह

(पेज 11 पर जारी)

'बकलमे-खुद' स्तम्भ के बारे में चन्द बातें

-सम्पादक मण्डल

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ज़िन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मज़दूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मज़दूर संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं – कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मज़दूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचन्द उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्जाक ओर चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की ज़िन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की ज़िन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर है। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मज़दूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आम जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा "वामपंथी कुलीनों" का है। ये "कलाजगत के शरीफजादे" हैं जो प्रायः प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की ज़िन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचन्द का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं।

समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों-कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की ज़िन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मज़दूर भी होंगे। भारत का मज़दूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मज़दूर या मज़दूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा।

आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मज़दूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मज़दूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर इस स्तम्भ की शुरुआत की गयी है। मुमकिन है कि मज़दूरों और मज़दूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। ज़िन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताजगी हो।

हमारा यह अनुरोध है कि मज़दूर साथी अपनी ज़िन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें। **साथ ही प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी भेजे।**

इस अंक में हम एक मज़दूर **विजय कुमार सिंह** की कहानी छाप रहे हैं।

बंधुआ मज़दूर

● विजय कुमार सिंह

करमचन्द गांव लौट आया था। नयी बनियाइन और लुंगी पहनकर, कीचड़ भरे गांव की गलियों से निकलता तो करमचन्द के भाग्य को सब सराहने लगते। करमचन्द के घर आने के बाद उसके पिता ने महाजन का हिसाब सूद सहित चुकता कर दिया था।

करमचन्द की कमाई की चर्चा घर-घर हो रही थी। हर पिता अपने नौजवान बेटे को करमचन्द की कमाई से सबक लेने की सलाह दे रहा था। युवा वर्ग भी करमचन्द की कमाई का रहस्य जानने को उतावला था।

करमचन्द हल्द्वानी में राजमिस्त्री का काम करता था। नौकरी-पेशा लोगों के लिए आवासीय मकान बनाने का

ठेका लेना उसका पेशा था। कभी-कभी रुद्रपुर के ग्रामीण क्षेत्र में मकान निर्माण के लिये आता था। फार्मों के बड़े-बड़े किसानों से उसकी जान-पहचान हो गयी थी।

गन्ना का सीजन चल रहा था। सरदार हरगोविन्द इलाके के बड़े फार्मर थे। मजदूरों की कमी के कारण गन्ने की छिलाई नहीं हो पा रही थी। फसल खेतों में तैयार थी। चीनी मिल कब पेराई बंद कर दे, कोई ठीक नहीं था। बेचारे का लाखों का नुकसान होने का भय था। खेतों की तरफ नजर जाते ही सरदार जी के कलेजे में हूक उठने लगती। मति मारी जाती थी।

एक दिन सरदार जी की भेंट करमचन्द से हुई। सरदार जी करमचन्द से बोले, यार, तुम तो बिहार के हो, उधर मजदूर बहुत मिलते हैं। मेरा सीजन खराब होता जा रहा है।

करमचन्द पारखी था। सरदार जी के आशय को भांपकर बोला, 'सरदार जी, मजदूर मिल जायेंगे। मगर 20 हजार पेशगी देनी होगी।' सरदार जी को मुंहमांगी मुराद मिल गयी। करमचन्द सरदार जी का विश्वसनीय व्यक्ति था।

गांव आकर करमचन्द ने अपने युवा साथियों को हल्द्वानी के पर्वतीय समाज के बारे में तरह-तरह के मनलुभावने कहानियां सुनायीं। कोई-कोई पहाड़ी फौजी अच्छा मकान बनाने पर मजदूरी के साथ नगद इनाम भी दे देता है। रोज शाम को काम खत्म होने पर फौजी शराब भी घूंट-दो घूंट गला कर करने को मुफ्त में मिल जाती है। सेना में काम करते हैं, पैसों की चिन्ता नहीं करते। देशी लोग अठन्नी-चौव्वनी तक का हिसाब रखते हैं।

करमचन्द की बातों को सुनकर युवकों के मुंह में पानी आ जाता। वैसे भी पिछले पांच छह सालों से पहले सूखे और फिर बाढ़ से जो तबाही मची थी उससे गांव की आबादी के लिए घर गिरस्ती चलाना दूभर हो गया था। गांव के बहुत से नौजवान पहले ही परदेस कमाने चले गये थे। जो बच गये थे वे भी परदेस जाने का जरिया ढूढ़ रहे थे। करमचन्द का प्रस्ताव उनके लिए बिल्ली के भाग से छींका टूटने जैसा था। सभी करमचन्द के साथ ठेका में काम करने के लिए लालायित हो उठे। करमचन्द चालाक था। उसने कुछ लोगों को हल्द्वानी ले आने का वादा किया।

किस्मत का खेल भी अजीब होता हैं करमचन्द अपने साथियों के साथ किच्छा रेलवे स्टेशन पर उतरा तो शाम हो चुकी थी। सरदार जी का टैक्टर ट्राली खड़ा था। सभी लोग ट्रैक्टर-ट्राली से फार्म हाउस पहुंचे। वहां रात के भोजन का बड़ा भव्य आयोजन था। कइयों को ऐसा भोजन ब्याह-शादी के अवसर पर नसीब ही हुआ था। सभी खुश थे।

सुबह होते ही करमचन्द मकान निर्माण के लिए जगह देखने चला गया। फार्म हाउस के गेट पर दो लठैत आकर खड़े हो गये।

सात बजे सरदार जी का नौकर हंसिया लेकर आया। युवकों को गन्ना के खेत में चलने को कहा। युवक भौंचक्के रह गये। नौकर की गलत फहमी समझकर युवकों ने उससे कहा, हमलोग मकान बनाने आये हैं।'

नौकर हंसने लगा। 'हर कोई ऐसा ही बहाना यहां आकर पहले पहल करता है। तुम लोग सीजन भर सरदार जी के बंधुआ मजदूर हो, तुम्हारा ठेकेदार तुम लोगों को सरदारजी के पास गिरवी रख गया है सीजन भर दाल-चावल मिलेगा। अन्त में घर जाने का किराया। अगर अच्छा काम करते रहोगे तो तुम लोगों को एक-एक जोड़ी कपड़ा।

बिहारी युवकों का सिर फिर गया।

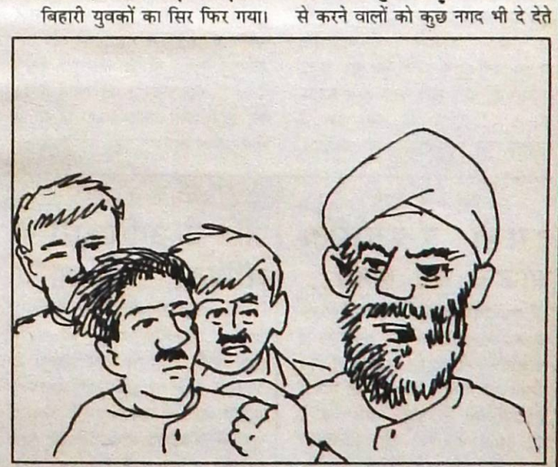

करमचन्द की घी चुपड़ी बातों की असलियत सामने थी। युवा खून खौला मगर चिड़िया उड़ चुकी थी। सामने बाघ खड़ा था। धोखा से उत्पन्न क्रोध , भय बनकर रह गया।

अनजान जगह कोई सहायता नहीं मिल सकती थी। आफत मुंह बाये खड़ी थी। सरदार जी से विनती की गई। धोखे की कहानी कही गयी। सरदार जी के कानों में जूं नहीं रेंगी। अंत में चिढ़कर बोले, 'मजूरी मजूरी होती है। मजदूरी करने आये हो। मजदूरी करो। करमचन्द, तुम लोगों का ठेकेदार था। तुम लोगों के लिए 20 हजार नगद मुझसे लिया था। उसने तुम लोगों को धोखा दिया, मैं नुकसान क्यों ऊठाऊँ? मेरा काम करो या पैसा वापस लौटाओ।

20 हजार रुपये? यहां युवकों के पास बीड़ी-तम्बाकू के लिये नगद पैसे नहीं थे। मरता क्या न करता, आगे राह नहीं थी।

सरदार जी अपने फार्म की ओर चले गये सरदार जी का नौकर युवकों को समझाने लगा, 'गरीब लोग हो, कहीं काम-धन्धा नहीं मिलता। सरदार जी स्वभाव के कड़े जरूर हैं। थाना कोतवाली सब जगह उनकी इज्जत हैं। सब उनकी सुनते हैं। काम-धन्धा ठीक से करने वालों को कुछ नगद भी दे देते हैं इलाके में ऐसा सरदार नहीं है। बड़े गुरुद्वारा में हजारों किलो अनाज गुरु सेवा में दान करते हैं। सेवाधर्मी तथा दयालु हैं।

सरदार जी की तरफ से इन मजदूरों के लिए चाय आ गयी। सबने बड़े कष्ट से चाय पी। सब विचार-विमर्श में तल्लीन हो गए। गंवार भोले-भाले नवयुवकों को सारा दोष करमचन्द में दिखा। सरदार जी निर्दोष समझे गये?

सब हंसिया लेकर गन्ने की खेत की ओर चल पड़े। युवकों के जाने के बाद सरदारनी घर के बाहर निकल कर आईं। नौकर से हंसकर बोली, 'क्यों, खेत पर गये?' नौकर ने भी हंसकर उत्तर दिया, 'मालिकिनी, यह नई बात थोड़ी है।'

मालिकिनी ने राहत की सांस ली। गन्ना काटते हुए मजदूरों को एक नजर देखकर मालिकिनी 'वाहे गुरू' की आवाज लगाकर घर में लौट गयी। ●

इन्सानी गुर्दों की मण्डी बना- पंजाब का शहर अमृतसर

पंजाब 'पवित्र शहर' का दर्जा दिए जाने की मांग के लिए सभी तरह की मानवीय बुराईयों नशे से मुक्त करके चर्चित रहा। अमृतसर शहर लगता है अपनी पवित्रता को बचा नहीं सका। अब यह सारे देश की "इन्सानी गुर्दा मण्डी" के रूप में सुर्खियों में है। यहां देशभर से गरीबी और बेरोजगारी से लाचार मजदूर अपना गुर्दा बेचने के लिए लाए जाते थे और इन गुर्दों के खरीदार देश-विदेश से इसी शहर में पहुंचते थे। पिछले 5-6 साल से सारा देश, सारी सरकारें इस शहर में रहने वाले तमाम शरीफ लोग, इस व्यापार में दोनों हाथों से धन इकट्ठा कर रहे लोगों की चमक-दमक देख रहे थे। ये सबकुछ इसी खामोशी से यूं ही चलता रहता अगर 'मानव अधिकार संगठन' इस धन्धे की छानबीन करके, रोकने की मांग न करते।

हालांकि इस व्यवस्था को चलाने वाली सरकारों ने मानवीय अंगों के रोपण का एक्ट 1994" बनाया हुआ है, जिसमें गुर्दा रोगी के करीबी रिश्तेदार को ही अंग दान करने की इजाजत है। पर इसी एक्ट में यह भी प्रावधान है कि अगर उसके करीबी रिश्तेदार की बजाए, दूसरा कोई आदमी रोगी के लिए जजबाती होकर अपना गुर्दा दे देता है तो लिया जा सकता है। इस जजबाती इन्सान का गांव के मुखिया या शहर के काउंसिलर, वकील, मजिस्ट्रेट से पूरी तसदीक करने के बाद, डाक्टरों की बनी ऑथोराइजेशन कमेटी" से हरी झण्डी लेने के बाद ही गुर्दा लिया जाना होता है और गुर्दा दान करने के बाद दो महीने तक उसकी मेडिकल सहायता की जिम्मेदारी भी गुर्दा लेने वाले रोगी के सिर ही होती है। इस एक्ट में "जज्बाती रिश्तों" की धारा ही इस अमानवीय व्यापार की नींव-पत्थर साबित हुई और खूब चला बे-रोकटोक कानून को तोड़ने का, सारे देश से मजदूरों को फुसलाकर गुर्दा खरीदने, गुर्दा निकालने के बाद उनको बिना मेडिकल सहायता के भगाने और मरने वाले 'गुर्दादानी' की लावारिश लाशों को जलाने का काम। इस कड़ी की

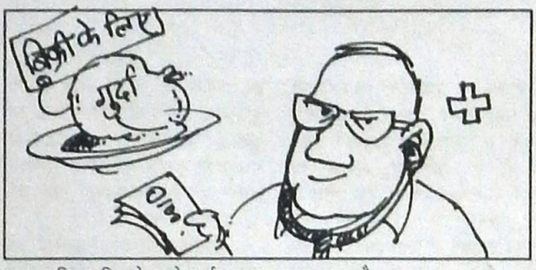

मुख्य भूमिका निभाने वाले सर्जन डा. सरीन और उसकी टीम ने डाक्टर से ज्यादा मण्डी के एक व्यापारी और यमराज का काम निभाने में कोई कसर बाकी न छोड़ी। "आथोराईजेशन कमेटी" के अध्यक्ष डा. ओ.पी.महाजन जो कि स्थानीय मेडिकल कालेज के प्रिंसिपल भी हैं, ने खूब कमाई की सादे सर्टिफिकेट पर साइन करके, डा. सरीन को हरेक गुर्दा लेने वाले का गुर्दा निकालने की अथारिटी देकर। इस तंत्र में मजिस्ट्रेट, पुलिस, काउंसिलर, वकील, दलाल लाखों कमाते रहे, इस व्यापार में शामिल होकर। "मानव अधिकार संगठनों" ने भूतपूर्व व वर्तमान सरकारों के स्वास्थ्य मंत्रियों को भी शामिल होने की ओर इशारा किया है और जांच टीम ने भी इससे इन्कार नहीं किया है।

सिर्फ अमृतसर में ही इस डा. सरीन ने 1992 के करीब गुर्दा अदलाबदली के आपरेशन किए जिसमें 99 प्रतिशत गुर्दादानी बगैर किसी रिश्ते के दिखाए गए हैं। जिससे 100 करोड़ का व्यापार हुआ। 70 प्रतिशत गुर्दा बेचने वाले पंजाब के बाहर के मजदूर थे और 30 प्रतिशत पंजाब के ही थे। गुर्दा बेचने वालों के 90 प्रतिशत पते गलत लिख कर काउंसिलरों, वकीलों और मजिस्ट्रेटों से तसदीक करवाए गए। तकरीबन 12 गुर्दा बेचने वालों के गुर्दे निकालने के बाद डाक्टरी सहायता न मिलने के कारण मौतें हो गयीं। इन्हें लावारिस लाशें कहकर जलाने के बारे में पता चल चुका है।

हमेशा की तरह इस व्यवस्था की सभी कड़िया इस अमानवीय शोषण का दोष एक-दूसरे पर डालकर अपने आपको निर्दोष साबित करने की होड़ में लग चुकी हैं। पर मुख्य दोषी वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था अपने आप को निर्दोष साबित करने में कामयाब नहीं हो सकती। जिसका बेलगाम बढ़ता मजदूर वर्ग का शोषण कारखानों, खेतों, घरों में चलकर अब जिन्दा मजदूरों के अंगों को निकालने पर आ पहुंचा है। यह बाजार और मुनाफे की व्यवस्था ही जिम्मेदार है-गरीब और अमीर के वर्गीकरण के लिए, पूंजीवादी वर्ग का एकाधिकार स्थापित करने के लिए सरकारी तंत्र में अमानवीय भ्रष्ट अफसर लगाने के लिए, मेडिकल शिक्षा की नीलामी करके व्यापारी डाक्टर पैदा करने के लिए, स्वास्थ्य सुविधाओं को खरीदी और बेची जाने के लिए मजदूर वर्ग का शोषण करके उसको गुर्दा बेचने को मजबूर होने के लिए। इस दोषी को सिर्फ मजदूर वर्ग ही सजा दे सकता है-समाजवादी क्रांति का बिगुल बजाकर, अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी संभालते हुए हर तरह की मण्डी का अंत करके।

● हरदीप

संकटग्रस्त व्यवस्था की बौराई पुलिस

पुलिसिया जुल्म बर्बरता के रोज नये-नये किस्से जो सामने आ रहे हैं, वे सत्ता की बढ़ती निरंकुशता और फासिस्ट चरित्र को बेनकाब कर रहे हैं। सच तो ये है कि पुलिसिया उग्रवादी कारनामों की एक बानगी ही बुर्जुआ मीडिया में आ पाती है, उसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि तस्वीर कितनी भयावह है। हिरासत में की गई ठंडी हत्या हो या दिन-दहाड़े निर्दोष जनता पर की गई फायरिंग, इन घटनाओं में निरंतर वृद्धि ने मानवाधिकारों की रक्षा के सरकारी दावों की पोल खोलकर रख दी है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की ही रिपोर्ट के अनुसार पुलिस हिरासत में होने वाली मौतों की संख्या लगातार बढ़ रही है। वर्ष 2000-2001 में 1031 लोगों के मुकाबले वर्ष 2001-2002 में 1305 लोगों को हिरासत में मार डाला गया। जाहिर है पुलिस हिरासतें अब हिरासतें नहीं रहीं, वे कत्लगाह बन चुकी हैं। खाकी वर्दी आम जनता के दिल में दहशत पैदा करती है, अपराधियों के दिलों में नहीं।

इस देश के एक उच्च न्यायालय के एक प्रसिद्ध न्यायाधीश ने पुलिस को "अपराधियों के सर्वाधिक संगठित गिरोह" की संज्ञा दी थी। आजादी के बाद कितने ही जलियाँवाला बाग जैसे कांडों को "आजाद" हिन्दुस्तान की पुलिस ने अंजाम दिया है। अभी पिछले हो दिनों पटना में तीन मासूम छात्रों को गोली मार देने की घटना पुलिसिया आतंक राज का ताजा उदाहरण है। गुजरात के दंगों में पुलिस की भूमिका किसी से छुपी नहीं है। पुलिस के एक उच्च अधिकारी ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि दंगों के दौरान प्राय: पुलिस स्वयं दंगाई की भूमिका में आ जाती है और अल्पसंख्यकों पर कहर बरपा करने में हिन्दू पार्टी की भूमिका निभाती है।

सवाल यह है कि "अपराधियों के सर्वाधिक संगठित गिरोह" को तैयार किसने किया और उसे संचालित कौन करता है? क्या किसी भी कांड में शामिल पुलिसकर्मी ही उस अपराध के मुख्य दोषी हैं? दरअसल, दोषी तो पूंजीवादी राज्यसत्ता है, जो जनता पर आतंक-राज कायम कर टिकी रहती है। आतंक कायम करने का एक मुख्य उपकरण पुलिस है। इसीलिए आम जनता के बीच से बेरोजगारी के मारे नौजवानों की भीड़ में से छांटकर वेतनभोगियों की नियुक्ति की जाती है। उन्हें ऐसे प्रशिक्षित किया जाता है कि वे आतंककारी तंत्र के कल पुर्जे बन जायें।

कई भलेमानुष सोचते हैं कि जरूरी शासकीय-प्रशासकीय सुधार कर पुलिस की क्रूर-हिंसक कार्यशैली में सुधार आ जायेगा। ऐसे लोगों की चाहत पूरी करने और एक भ्रमजाल खड़ा करने के लिए सरकार अनेक कार्यक्रमों को लागू करती है, जिनमें पुलिसकर्मियों को नसीहत दी जाती है कि मानवीय मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनो। 'आपकी रक्षा में सदैव तत्पर' जैसे नारे उछाले जाते हैं। नतीजा वही 'ढाक के तीन पात' होता है, क्योंकि उसे ऐसा ही होना था। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का खुला उल्लंघन करते हुए पुलिस अपनी मनमानी करती है, मनमाफिक बयान उगलवाने के लिए 'थर्ड डिग्री' का प्रयोग करती है, हिरासत में अमानवीय यातनाएं देती है। आम जनता और खास तौर पर भद्रजनों को यह समझना ही होगा कि पुलिस-जुल्म का मुकाबला जनता केवल अपनी संगठित शक्ति के बल-बूते पर ही कर सकती है।

विशेषकर आज के दौर में यह बात समझना जरूरी है कि आम मेहनतकश जनता को गोलबंद और संगठित कर ही मानवाधिकारों की रक्षा की बात हो सकती है। आज जब दुनिया भर की बुर्जुआ राज्य सत्ताएं दमनकारी और फासिस्ट तेवर के साथ फौजी बूटों तले मानवाधिकारों को कुचल रही हों, जब पूंजीवादी व्यवस्था के असमाधेय गम्भीर संकटों का कहर गरीब मेहनतकश आबादी पर बरपा किया जा रहा हो, प्रतिरोध में उठने वाले हर स्वर को राज्यसत्ता द्वारा बर्बर और अमानुषिक ढंग से शान्त किया जा रहा हो, तो ऐसे समय में, बेहतर होगा कि यथाशीघ्र अपने मतिभ्रमों से छुटकारा पाकर इस सच को स्वीकारें कि व्यवस्था विरोधी संघर्षों को गति प्रदान कर ही हम अपने लोक अधिकारों की लड़ाई लड़ सकते हैं।

● मोहन

(पेज 6 से आगे)

दसवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य...

एवं बिजली क्षेत्र के सार्वजनिक उपक्रम राज्यों में विकास की गति में अवरोधक बने हुए हैं। दूरसंचार, विद्युत उत्पादन व वितरण क्षेत्र में निजी निवेश को शुरुआत पर खुशी जाहिर करते हुए इसके क्षेत्र को और विस्तारित करने के साथ ही सड़क निर्माण, परिवहन, सिंचाई सुविधाओं के विकास आदि के लिए भी निजी निवेश को प्रोत्साहन देने की बात की गयी है।

कुल मिलाकर दसवीं पंचवर्षीय योजना विश्व साम्राज्यवादी शक्तियों और उनके छुटभैये देशी पूंजीपतियों की आज की चाहत के अनुरूप बन और लागू हो रही नीतियों का ही एक रूप हैं। सार्वजनिक उपक्रमों को बेचने, निजीकरण को बढ़ावा देने, निजी कम्पनियों के मुनाफे के रास्ते के अवरोधों को हटने, उन्हें रियायतें देने, सार्वजनिक सब्सिडियों में कटौती, नौकरियों में छंटनी आदि के माध्यम से "विकास" का लक्ष्य निर्धारित किया गया हैं और इस "विकास" के मार्ग की "बाधाओं" से सख्ती से निपटने की तैयारी की गयी है।

और फिर उम्मीद भी क्या की जा सकती थी! मुनाफा केन्द्रित व्यवस्था में जनहित में मानवकेन्द्रित योजना पहला बने ही क्यों?

(पेज 6 से आगे)

जीने के अधिकारों से वंचित.....

हथकण्डा अपनाते हैं वह है ज्यादा तनख्वाह लेने वाले मजदूरों की छंटनी तथा उनकी जगह पर पुराने मजदूरों से आधी तनख्वाह पर काम करने वाले नये मजदूरों को भर्ती करना। इसके अलावा बहुत सी फैक्टरियों में तो बहुत ही कम तनख्वाह पर काम करने वाले बाल मजदूर तथा महिलाएं भी मिल जाती हैं।

सुरक्षा इंतजामों पर खर्च को मालिक गैर जरूरी ही समझते हैं। इससे अक्सर यहां फैक्टरियों में हादसे होते ही रहते हैं। मजदूरों पर नजर रखने के लिए इन.दिनों अनेक फैक्टरियों में वीडियो कैमरों का इस्तेमाल हो रहा है। जिससे अपने दफ्तर में बैठे-बैठे ही मालिक मजदूरों पर नजर रखते हैं।

उपरोक्त के अलावा बोनस में मजदूरों को छोटी-मोटी गलती होने पर मां-बहन की गालियां मिलती है। कई बार तो मालिक तथा उनके चमचे मजदूरों से मारपीट भी करते हैं।

लुधियाना की मजदूर बस्तियां, जैसे कि शेरपुर, ढेठारो, गोविन्दगढ़, वर्धमान मिल के इर्द-गिर्द दर्जनों मुहल्लों तथा अन्य कई इलाकों में लाखों मजदूर आज अमानवीय जीवन जीने को मजबूर हैं। कई मजदूर बस्तियों को देखकर तो आदमी के जेहन में धर्म शास्त्रों वाले नर्क की तस्वीर उभरती है। ज्यादातर मजदूर इन बस्तियों, मुहल्लों में मुर्गीखानों की तर्ज पर बने बेड़ों (लाजों) में रहते हैं। कई बेड़ों में तो 100 से 150 तक कमरे भी होते हैं मजदूरों की तनख्वाहें इतनी कम हैं कि अकेले कमरा लेकर रहना उसके बस की बात नहीं है। इसलिए मजबूरन एक-एक कमरे में 4-5 आदमी रहते हैं। मकान मालिक किराया तो ठोंककर (400 से 600 रु. तक) लेते हैं मगर इनमें रहने वाले मजदूरों को पानी, लैट्रिन तथा बाथरूम जैसी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं देते। सैकड़ों लोगों के इस्तेमाल के लिए एक ही लैट्रिन, बाथरूम होता है। ज्यादातर बेड़ों में बाथरूम तो होता ही नहीं खुले में ही नल पर नहाना पड़ता है। नतीजा यह होता है कि सुबह नहाने तथा लैट्रिन जाने के लिए लम्बी लाइनें लगानी पड़ती है।

इसलिए खाना बनाने और तैयार होकर फैक्टरी पहुंचने के लिए मजदूरों को सुबह जल्दी ही उठना पड़ता है। जिससे इनकी नींद भी पूरी नहीं हो पाती। बेड़ों, बस्तियों के गंदगी भरे माहौल, अधूरी अपौष्टिक खुराक, उनीदरें (नींद का पूरा न होना) आदि के कारण इन इलाकों में अक्सर ही कोई न कोई बीमारी फैली रहती है। ऐसे समय इन इलाकों में दुकानें खोलकर बैठे डाक्टरों का सीजन होता है। ये भी मजदूरों को लूटने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ते।

कई बेड़ों के मालिकों ने बेड़ों में ही अपनी दुकानें खोल रखीं हैं और मकान मालिक मजदूरों को उन्हीं की दुकान से सामान खरीदने के लिए मजबूर करते हैं और सामान में हेराफेरी करके मजदूरों का दुहरा शोषण करते हैं। चूं-चपड़ करने पर मजदूरों से कमरा खाली करवा लिया जाता है। ऐसे में पंजाब सरकार द्वारा किरायेदारों की सुरक्षा के लिए बनाया गया कानून मजदूरों के किसी काम नहीं आता।

बेड़ों में होने वाली चोरियां मजदूरों के लिए एक और बड़ी मुसीबत है। कपड़े तथा पैसे बेड़ों में अकसर चोरी होते रहते हैं। कपड़े धोकर अगर धूप में सुखाने हैं तो पास में रहना पड़ता है नहीं तो कपड़े भी कमरे के अन्दर ही सुखाने पड़ते हैं। छोटे से कमरे में जहां पहले से ही चार-पांच आदमी रहते हैं। उसी कमरे की एक साइड पर बांधी हुई रस्सी पर डाले हुए गीले कपड़े भी देखे जा सकते हैं।

पैसे की चोरी तो मजदूरों में असहनीय होती है। इतनी मुसीबतें झेलकर कमाया पैसा जिसका चोरी हो जाय तो उसकी परेशानी को समझा जा सकता है।

फैक्टरी मालिकों, उनके चमचों, बेड़े (लाज) मालिकों तथा चोरों के अलावा मजदूरों के लिए मुसीबत एक और वजह है वहां की पुलिस तथा प्रशासन। पुलिस थानों तथा प्रशासन में पूरब से आये मजदूरों की कोई सुनवाई नहीं होती क्योंकि पुलिस तथा प्रशासन में पंजाबी भरे पड़े हैं जो अन्य कारणों के अलावा नकली नफरत से भी ग्रस्त होते हैं। लुधियाना में यू.पी. बिहार से आये मजदूरों की बड़ी संख्या उन लोगों की है जो अपने गांव में छोटे किसान थे। अभी भी बहुत से मजदूरों का किसानी जीवन में जमीन से जुड़ाव बना हुआ है। इसलिए उनका गांव आना-जाना लगा रहता है। क्योंकि ज्यादातर मजदूर यहां अकेले रहते हैं और उनके परिवार गांव में ही रहते हैं इसीलिए मंदी के दिनों में अक्सर ज्यादातर मजदूर गांव चले जाते हैं। मजदूरों का यह आवागमन मजदूरों को संगठित करने में एक रुकावट बनता है।

जमीन से जुड़ाव के चलते भी अभी किसानी मानसिकता की जकड़ उनमें टूटी नहीं है। किसानी (सामंती) संस्कृति भी अभी उन मजदूरों की चेतना पर हावी है। मगर यहां पर देखने में आया है कि मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ती गयी है जो भी नये-नये बेड़े बनते हैं तुरन्त ही भर जाते हैं। नयी-नयी बस्तियां तथा मुहल्ले, झुग्गी-झोपड़ियां यहां खुंबियों (मशरूम) की तरह पनपी हैं। और अब देखने में आ रहा है कि यहां पर उन मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। जिनके परिवार (बीवी, बच्चे) भी साथ में ही रह रहे हैं। कुछ मजदूरों ने तो अपनी पत्नियों को भी काम पर भेजना शुरू कर दिया है। इस तरह यहां पर मजदूरों में धीरे-धीरे स्थायित्व आ रहा है। यह मजदूरों को संगठित कर पाने में बहुत सहायक सिद्ध होगा। एक और जो महत्वपूर्ण पहलू नोट करने वाला है वह यह है कि यहां पर काम करने वाले मजदूरों का बड़ा हिस्सा युवा मजदूरों का है और इनमें भी ज्यादातर मजदूर पढ़े लिखे हैं, बिल्कुल ही अनपढ़ मजदूर कम मिलते हैं। यह बात भी मजदूरों के बीच राजनीतिक विचारधारात्मक प्रचार-प्रसार तथा मजदूरों को शिक्षित-प्रशिक्षित करने में सहायक होगी।

(बाकी अगले अंक में)

भोपाल गैस त्रासदी को याद करते हुए

बने हैं अहले हवस, मुद्दई भी मुंसिफ भी

भोपाल गैस त्रासदी को अठारह वर्ष बीत चुके हैं। किसी छोटे-मोटे युद्ध में जितने लोग मारे जाते हैं, उससे कहीं ज्यादा इसमें मारे गये थे। हिरोशिमा-नागासाकी की भांति भोपाल की जनता भी आज तक भीषण गैस त्रासदी को नहीं भुला पाई है, उसके जख्म आज भी भरे नहीं है। रासायनिक हथियारों से लड़े गये किसी युद्ध की विभीषिका की तरह भोपाल गैस हत्याकाण्ड को भोपाल की निर्दोष जनता ने झेला है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार आठ हजार और भोपालवासियों के अनुसार करीब बीस हजार से अधिक लोग इस हत्याकाण्ड में मारे गये थे और लाखों लोग प्रभावित हुए। दो-तीन दिसम्बर 1984 की उस काली रात का साया आज भी भोपाल की जनता का पीछा कर रहा है। लेकिन इस जघन्य हत्याकाण्ड के अभियुक्त यूनियन कारबाइड कम्पनी के मालिकान सुख-चैन की वंशी बजा रहे हैं।

भोपाल गैस हत्याकाण्ड का मुख्य अभियुक्त वारेन एण्डरसन अमेरिका में छुपा बैठा है। आतंकवाद विरोधी अभियान के स्वयंभू सरदार अमेरिका ने बीस हजार से अधिक हत्याओं के अभियुक्त को अपने यहां शरण दे रखी है। अमेरिका के दोगलेपन की इससे बड़ी मिसाल क्या हो सकती है कि वह एक तरफ आतंकवाद के सफाये के नाम पर अफगानिस्तान में मासूम नागरिकों पर बमबारी कर कत्लेआम करता है, इराक को नेस्तनाबूद कर देने की घोषणाएं करता फिर रहा है, नेपाल में जनविद्रोह को कुचलने के लिए करोड़ों डॉलर और हथियार मुहैया कराता है तो दूसरी तरफ एण्डरसन जैसे हत्यारों को अपनी गोद में छुपाकर रखता है और तीसरी दुनिया को शान्ति का उपदेश पिलाता रहता है।

अपनी सरकारों की असलियत भी सामने आ चुकी हैं इसके जनतंत्र का नकाब भी तार-तार हो चुका है। इनका वर्ग चरित्र आम जन के सामने भी स्पष्ट होने लगा है। अपनी जन विमुखता को ये पूरी नंगई और बेशर्मी के साथ दिखा रहे हैं। सन् चौरासी के बाद केन्द्र और राज्य में कई सरकारें आयी-गयीं, लेकिन पीड़ित जनता को न्याय दिलाने की बात तो दूर इनकी हमदर्दी तो एण्डरसन और उसके गैंग के प्रति दिखायी देती रही। अभी तक किसी भी सरकार की यह हिम्मत नहीं हुई कि अमेरिका से एण्डरसन और उसके गैंग को भारत के हवाले करने की मांग करे।

अपनी खूनी हरकतों पर परदा डालने की यूनियन कारबाइड की लाख कोशिशों के बावजूद जो तथ्य सामने आये हैं, उससे यह साफ हो चुका है कि यूयिन कारबाइड ने अपने मुनाफे की हवस में जरूरी सुरक्षा इन्तजाम नहीं किये थे। रखरखाव के लिए घटिया तकनीक का इस्तेमाल किया था, जिससे इस मद में कम खर्च कर वह अपना मुनाफा बढ़ा सके। जानते-बूझते हुए भी यह किया गया कि इस कीटनाशक संयंत्र में टनों के हिसाब से मिथाइल आइसोसाइनेट जैसी गैसें हैं, जो अगर बाहर आ गयीं तो कहर बरपा कर देंगी। यही हुआ भी कि बीस हजार से ज्यादा मासूम लोगों को उसने मौत के घाट उतार दिया और हजारों को अधपरा कर दिया। मुनाफाखोरों के पक्ष में चुस्त हमारी न्याय व्यवस्था देखिए जिसने इस नरसंहार के बाद मुख्य अभियुक्त एण्डरसन की गिरफ्तारी की खानापूर्ति की और कुछ ही समय में उसे मात्र पच्चीस हजार रुपये की जमानत पर छोड़ दिया। यहां तक कि उसका पासपोर्ट भी जब्त नहीं किया गया और पुलिस ने उसे रिमाण्ड पर लेकर पूछताछ करने की जहमत भी नहीं उठायी। कहा जा सकता है कि उसके भारत से भाग जाने के लिए रास्ता साफ किया गया ताकि अमेरिका में वह सुरक्षित रह सके। यह है हमारा 'महान लोकतंत्र' जिसमें नरसंहार के अभियुक्त हत्यारे एण्डरसन को पूरी सुरक्षा प्रदान की जाती है, क्योंकि वह मुनाफाखोर जमात का है और लोक के प्रति कोई जवाबदेही नहीं होती क्योंकि आम जन उनके लिए मुनाफा पैदा करने वाली मशीन का सिर्फ एक पुर्जा है, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

सन् चौरासी से अब तक लगभग सभी चुनावबाज पार्टियां कभी-न-कभी केन्द्र में सत्तासुख भोग चुकी हैं, लेकिन भोपाल गैस हत्याकाण्ड हो या कोई और सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे नजर आते हैं। वर्तमान सरकार का क्या कहा जाए, यह तो स्वयंभू सर्वोत्तम राष्ट्रभक्तों की सरकार है। आज जो अपने को सबसे बड़ा राष्ट्रवादी साबित कर रहे हैं, वही धनपशुओं के सबसे बड़े सेवादार हैं इन "राष्ट्रभक्तों" का तो मूल मंत्र ही है-मुंह में राम, बगल में छुरी, दोस्त को कत्ल और दुश्मन की जी-हजूरी। इन्हें एक गरीब आदमी इसलिए दुश्मन नजर आ सकता है, क्योंकि वह दूसरे धर्म का है और पांच बच्चे पैदा करता है लेकिन इन्हें बीस हजार इंसानों का कातिल एण्डरसन नजर नहीं आता। दरअसल ये राष्ट्र के नहीं, बल्कि पूंजी के सच्चे स्वयंसेवक हैं। इन अमेरिका परस्तों से क्या उम्मीद की जाय? ये हों या अन्य चुनावबाज पार्टिया सरकार में हो, ये सिर्फ जनदबाव की भाषा समझते हैं, संगठित जनाक्रोश की भाषा समझते हैं। भोपाल गैस हत्याकाण्ड के पीड़ितों का मामला भी इसका अपवाद नहीं हो सकता।

गैस काण्ड के अठारह साल बाद भी भोपाल के करीब तीन लाख लोग गैस के दुष्प्रभावों से जूझ रहे हैं। कई सरकारी, गैर सरकारी एनजीओ के काम (?) करने के बावजूद आदर्श पुनर्वास के नाम पर बनायी गई कालोनी में लगभग दो हजार विधवाएं नारकीय जीवन जी रही हैं, विधवाओं को 150 रुपये महीना पेंशन दी जाती है, जबकि उन पर 60 रुपये महीना जल कर और 180 रुपये सालाना संपत्ति कर लगा रखा है। पुनर्वास का काम अठारह साल बाद भी मुकम्मल ढंग से नहीं हो सका है। यही नहीं, यूनियन कारबाइड कारखाने के आसपास प्रदूषित भूजल के कारण हजारों की गरीब आजादी जहरीला पानी पीने को मजबूर है। यूनियन कारबाइड कारखाना परिसर में आज भी जहरीला मलबा पड़ा है, जिसका असर आसपास की बस्तियों के बाशिंदों पर पड़ रहा है। वे खतरनाक परिस्थितियों में जीने को मजबूर हैं।

यूनियन कारबाइड को अमेरिका की ही डाव केमिकल कम्पनी द्वारा 2001 में खरीदा जा चुका है। शायद अमेरिकी मुनाफाखोर समझते हैं कि इस देश से बेहतर जगह भला और कौन सी होगी, जहां इतने बड़े नरसंहार के बाद भी सरकारें आपको सम्मानपूर्वक विदा कर देंगी और आपके दूसरे परिवार को उसी जगह पर मुनाफा बटोरने के लिए आमंत्रित कर लेंगी।

भोपाल गैस हत्याकाण्ड के हत्यारों और उनकी हिफाजत करने वालों को देश की जनता कभी नहीं भूलेगी। बीते अठारह सालों में जनता यह भी समझ चुकी है कि सवाल सिर्फ एक एण्डरसन की सजा दिलाने का नहीं। एण्डरसन तो मुनाफाखोर व्यवस्था का महज एक प्यादा है। देश में और दुनियाभर में एण्डरसनों की जमात भरी पड़ी हैं जो मुनाफे की व्यवस्था में फल-फूल रहे हैं। आये दिन औद्योगिक क्षेत्रों में छोटी-बड़ी 'दुर्घटनाओं' की खबरें आती रहती हैं। ये सभी दुर्घटनाएं नहीं वरन मुनाफे की हवस के हाथों होने वाली ठंडी हत्याएं ही होती हैं। इसलिए अगर ऐसे हत्याकाण्डों को रोकना है तो हम मुनाफे पर टिकी इस व्यवस्था को ही मिटाना होगा। अठारह साल बाद भोपाल त्रासदी को याद करते हुए हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए।

- राकेश

(पेज 8 से आगे)

तुम्हारी क्षय

में, छोड़ आयें जहां उसे जीवनभर वेश्यावृत्ति या उसी तरह का कोई काम करना होगा। समाज के कारण उसके भाई-बन्धु उसे जहर भी खिला सकते हैं, हथियार से भी मार सकते हैं। यदि गुप्त संबंध को छिपाया जा सका, तो गर्भ तो जरूर ही एक-दो गिराये जायेंगे। जो समाज इन सब बातों को अपनी आंखों देखता है और इसके परिणामों को भी भलीभांति समझता है, वह कैसे इतनी असंभव शर्तें अभागे व्यक्तियों के सामने पेश करता है? क्या इससे उसकी हृदयहीनता स्पष्ट नहीं होती है? हर पीढ़ी के करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को इस प्रकार कलुषित, पीड़ित और कंटकाकीर्ण बनाकर क्या वह अपनी नर-पिशाचता का परिचय नहीं देता? ऐसे समाज के लिए हमारे दिल में क्या इज्जत हो सकती है, क्या सहानुभूति हो सकती है? बाहर से धर्म का ढोंग, सदाचार का अभिनय, ज्ञान-विज्ञान का तमाशा किया जाता है और भीतर से यह जघन्य, कुत्सित कर्म। धिक्कार है ऐसे समाज को! सर्वनाश हो ऐसे समाज का।

जिस समाज ने प्रतिभाओं को जीते-जी दफनाया कर्तव्य समझा है और गदहों के सामने अंगूर बिखेरने में जिसे आनन्द आता है, क्या ऐसे समाज के अस्तित्व को हमें पलभर भी बर्दाश्त करना चाहिए? एक गरीब माता-पिता हैं। उनको खुद न अपने खाने-पीने का ठिकाना है, न पहनने-ओढ़ने का। उनके घर में एक असाधारण प्रतिभाशाली बालक पैदा होता है। लड़कपन से ही उसे किसी धनी के बच्चे को खेलाना पड़ता है, भेड़-बकरियां चराकर पेट पालने के लिए मजबूर होना पड़ता है। मां-बाप जानते तक नहीं कि लड़के को पढ़ाना लिखाना भी उनका कर्तव्य है। यदि वे जानते भी हैं, तो न उनके पास फीस देने के लिए पैसा है, न किताब के लिए दाम। लड़का बड़ा होता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है और साथ ही अपने साथ प्रतिभा को लिए जाता है जिसके द्वारा वह देश को एक चाणक्य, एक कालीदास, एक आर्यभट्ट, एक रवीन्द्र, एक रमन दे सकता था। मैंने गांव के एक अभिनेता को देखा है। यदि वह किसी ऐसे देश में पैदा हुआ होता जहां प्रतिभाओं के आगे बढ़ने के सारे रास्ते खुले हैं, तो वहां वह प्रथम श्रेणी का जगत विख्यात अभिनेता होता। लेकिन, आज साठ बरस की अवस्था में इस अशिक्षित व्यक्ति की वह महान् प्रतिभा ग्रामीण स्त्री-पुरुष-जीवन के कुछ सजीव चित्रण द्वारा अपने परिचितों का कुछ मनोरंजन मात्र कर सकती है। मैंने ऐसे स्वाभाविक कवि देखे हैं जिन्हें अक्षर का कोई भी ज्ञान नहीं। जिस भाषा को बोलते हैं, उनमें कोई लिखित साहित्य नहीं, कोई आचार्य-परम्परा नहीं, छन्द और अलंकार के परिचय का कोई साधन नहीं, तब भी अपनी भाषा में वे बहुत ही भावपूर्ण, रसपूर्ण कविता कर सकते हैं। शिक्षित जन उनकी कविता को, गंवारू कहकर निरादर करते हैं और इसके कारण वे खुद भी उसे वैसा ही समझते हैं। कवित्व के लिए बाहर से न उन्हें कोई प्रेरणा मिलती है, न प्रोत्साहन, सिर्फ अन्त:प्रेरणा से मजबूर होकर वे कभी-कभी कुछ गा लेते हैं। मैं गांव के एक लड़के के बारे में जानता हूं। उसकी मां विधवा है। नाम मात्र का थोड़ा-सा खेत पुत्र और माता की जीविका का साधन है। लड़का गांव की पाठशाला में पढ़ने बैठा। असाधारण, मेधावी, गणित में विशेष निपुण। प्राइमरी-स्कूल में उसे छात्रवृत्ति मिली जिसकी सहायता से उसने मिडिल पास किया। वहां भी उसने छात्रवृत्ति पाई। यद्यपि पर्याप्त न थी, तो भी किसी तरह वह अपनी पढ़ाई को जारी रख सकता था। मैट्रिक में युक्तप्रान्त से उत्तीर्ण होने वाले कई हजार छात्रों में उसका नम्बर दूसरा या तीसरा था। किन्तु जो एक या दो छात्र उसकी अपेक्षा अधिक नम्बर से पास हुए थे, वे धनियों के लाडले थे। उनके ऊपर दो-दो, तीन-तीन अध्यापक घर में अलग रक्खे गये थे। उन्हें हमारे उक्त तरुण की तरह खाने-पीने की चिन्ता न थी। अबकी बार फिर उसे छात्रवृत्ति मिली। वह कालेज में पढ़ने लगा। फिजिक्स, केमिस्ट्री और गणित उसके विषय थे। छात्रवृत्ति पर्याप्त न थी। इधर स्वास्थ्य भी इतना अच्छा न रहा। उस पर से एक देहाती जगह से आकर तीव्र विद्यार्थियों के लिए मशहूर एक विश्वविद्यालय में उसने नाम लिखाया था। यहां छात्रवृत्तियां कम थी। संयोग से एक ही छात्रवृत्ति के लिए तीन विद्यार्थियों के नम्बर बराबर आ गये। छात्रवृत्ति किसको मिलनी चाहिए, इसका निर्णय करते वक्त विश्वविद्यालय ने ऐसे दो विषय ले लिए, जिनमें एक और ही छात्र-जो कि एक धनाढ्य की संतान था- के एक-दो नम्बर अधिक हो गये। किसी ने इसकी परवाह न की कि उस तरुण की प्रतिभा-जो घोर दरिद्रता में जन्म लेकर भी कितनी कठिनाइयों को पार कर यहां तक पहुंची थी- का भविष्य क्या होगा? मुझे उस तरुण से साल भर बाद मिलने का मौका मिला। मैंने देखा- उसका चेहरा थाइसिस के रोगी जैसा हो गया है। बदन बहुत दुबला-पतला। मैंने कारण पूछा। तरुण ने बहाना बना दिया। उसके चले जाने पर दूसरे साथी ने बतलाया- "उसे इस साल छात्रवृत्ति नहीं मिली। बहुत कहने-सुनने पर फीस माफ हो गई। खाने-पीने के लिए उसने ट्यूशन पाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन न मिला। एक-दो दोस्त अपने साथ रखने का आग्रह करते थे, लेकिन इसे वह अपने आत्मसम्मान के खिलाफ समझता था।" दूसरे दिन अपनी जानकारी को जतलाते हुए मैंने जब तरुण से पूछा तो उसने उत्तर दिया- "हां ठीक है। मैंने ट्यूशन के लिए बहुत कोशिश की, कालेज के घण्टों को समाप्त करके मैं घण्टों इसी फेर में घूमता रहा। लेकिन कहीं कुछ होते-हवाते न देख मैंने उसे अब छोड़ दिया है।" जिस वक्त मुझे उस प्रतिभाशाली तरुण की इस उपेक्षा को देखने का मौका मिला और यह भी सुना कि वह सिर्फ एक बार थोड़ी-सी खिचड़ी खाकर गुजारा करता आ रहा है, तो सच बताऊं मेरी आंखों में खून उतर आया। मुझे ख्याल आता था- ऐसे समाज को जीने देना पाप है। इस पाखण्डी, धूर्त, बेईमान, जालिम, नृशंस समाज को पेट्रोल डालकर जला देना चाहिए।

एक तरफ प्रतिभाओं की इस तरह अवहेलना और दूसरी तरफ धनियों के गदहे लड़कों पर आधे दर्जन ट्यूटर लगा-लगा कर ठोक-पीट कर आगे बढ़ाना। मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूं जिसके दिमाग में सोलहो आना गोबर भरा हुआ था, लेकिन वह एक करोड़पति के घर पैदा हुआ था। उसके लिए मैट्रिक पास करना भी असंभव था। लेकिन आज वह एम.ए. ही नहीं है, डाक्टर है। उसके नाम से दर्जनों किताबें छपी हैं। दूर की दुनिया उसे बड़ा स्कालर समझती है। एक बार "उसकी" एक किताब को एक सज्जन पढ़कर बोल उठे- "मैंने इनकी अमुक किताब पढ़ी थी। उसकी अंग्रेजी बड़ी सुन्दर थी, और इस किताब की भाषा तो बड़ी रद्दी है?" उनको क्या मालूम था कि उस किताब का लेखक दूसरा था और इस किताब का दूसरा।

प्रतिभाओं के गले पर इस प्रकार छुरी चलते देखकर जो समाज खिन्न नहीं होता, उस समाज की "क्षय हो" इसको छोड़ क्या कहा जा सकता है।

देशभक्ति की नयी फिल्मी पटकथा, उर्फ़ खुलासा इस राज़ का

कि कौन किसके दिल में रहता है!

● आनन्द देव

एक फिल्म आयी थी – 'हम आपके दिल में रहते हैं'। अब एक नयी फिल्म आपके सामने है –'आप हमारे दिल में रहते हैं'। यूं तो हर बम्बइया फिल्म मसालेदार होती है, किन्तु नयी फिल्म की खासियत यह है कि इसमें 'फारेन' (विदेशी) और 'इण्डियन' का धमाकेदार 'मिक्सचर' है। इस फिल्म के ढेर सारे पात्र विदेशी हैं लेकिन वे 'मेड इन इण्डिया' हैं। इन 'मेड इन इण्डिया' विदेशियों के लिये फिल्म में गीत गाया जाता है – आप हमारे दिल में रहते हैं। पलक पांवड़े बिछाये जाते हैं और 'मेड इन इण्डिया' विदेशी गाता है – हमारे दिल में आपका नक्शा रहता है। किसके दिल में क्या है? इसको देखने के लिए शूटिंग स्थल का नजारा देखें। यह स्थान है प्रवासी भारतीय सम्मेलन।

जनवरी के दूसरे सप्ताह में कुछ विदेशियों का एक बड़ा जमावड़ा दिल्ली में हुआ। सूत्रों के अनुसार यह पहला प्रवासी भारतीय सम्मेलन था। इसमें बड़े ड्रामे हुए। कुल मिलाकर यह एक बड़ा ड्रामा था। इस ड्रामे में अटल, आडवाणी, जसवंत वगैरह ऐसे गदगदाये नजर आये कि बिछुड़े प्रेमी आज यहां आकर मिल गये हों। प्रधानमंत्री के दिल से भावनाओं का ऐसा ज्वार उमड़ा कि वे सम्मेलन के उद्घाटन दिवस में गा उठे:

"विदेश में देश की शान बनाई,
भारत की पहचान,
सदा हमारे दिल में बसते, कैसे कहें मेहमान..."

भूमण्डलीकरण की धुन पर ऐसा 'स्वदेशी' गीत! प्रवासी भारतीय झूम उठे। इस गजब तुकबंदी पर खूब तालियां बजीं। सन्देश भी साफ था। दिल का मामला जब चल निकला तो बात हुई कि 'तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।' प्रवासी भारतीयों ने कहा, 'ये दिल मांगे मोर'।

खजाने के मालिक जसवंत सिंह ने प्रवासी भारतीयों के लिए व्यापक छूटों का ऐलान किया। अनेक प्रतिबंधों को हटा दिया। देश को निवेश का एक आकर्षक स्थान बना देने की घोषणा हुई। जाहिर है प्रवासी भारतीयों, जिनकी हैसियत है, को नोट बटोरने के लिए भारतीय बाजार उपलब्ध कराने का करार हो गया।

प्रवासी भारतीय सम्मेलन में विकसित देशों के प्रवासी भारतीयों को दोहरी नागरिकता देने की घोषणा भी कर दी गई। फिजी, मारीशस, सूरीनाम और अफ्रीका के गरीब देशों में बसे प्रवासियों को यह तोहफा नहीं मिला, क्योंकि वे यहां पूंजी लगाने की उतनी अधिक औकात नहीं रखते। हालांकि अभी उन्हें चुनाव लड़ने और वोट डालने का अधिकार नहीं होगा। लगता है वह भी देर-सबेर दे ही दिया जायेगा। दोहरी नागरिकता के अपने फायदे हैं। संकट के समय में भागकर दूसरी शरणस्थली में जान बचाई जा सकती है। सम्मेलन में आये दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि ने इस ओर इंगित भी किया कि दोहरी नागरिकता से जिस देश में प्रवासी भारतीय रह रहे हैं, वहां के स्थानीय निवासियों के साथ एक कटुता पैदा हो सकती है।

प्रवासी भारतीयों के इस मेले-ठेले में कौन भारतीय शामिल हैं? किसके लिए 'रेड कार्पेट' बिछाया जा रहा है? क्योंकि इस देश से बाहर जाने वालों में तो एक भारी आबादी उनकी है जो मेहनत-मजूरी करने विदेश जाते हैं और विदेश से पैसा भेजकर अपने यहां स्थित परिवारों को पालते हैं। देश की अर्थव्यवस्था में योगदान के सरकारी चश्में से भी देखें, तो इनका योगदान किसी भी रूप में कम नहीं है। इस आबादी ने यहां से लिया कम और दिया ज्यादा है। जो लाखों भारतीय मजदूर खाड़ी के देशों में हड्डियां गलाकर अपना परिवार पालने के साथ ही देश का विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ाने में अहम योगदान करते हैं, वे इस देश को छोड़कर अन्यत्र बसने नहीं गये हैं। उन लोगों के लिए आज तक इस सरकार ने कुछ नहीं किया। भला क्यों करें? उजरती गुलामों को तो एक सभ्य नागरिक मानना भी पूंजी की सभ्यता के खिलाफ है।

दरअसल, भूमण्डलीकरण के इस दौर में 'आम' नहीं, बल्कि 'खास' की ही चर्चा है। प्रवासी भारतीयों की बात करते हुए स्पष्ट है 'खास प्रवासी भारतीय'। ये खास प्रवासी भारतीय वे हैं जिन्हें इस देश ने पढ़ा-लिखा कर इंजीनियर, डाक्टर आदि बनाया। इनकी पढ़ाई-लिखाई में इस देश की मेहनतकश जनता का पैसा लगा। ये सयाने हुए तो और पैसा कमाने की चाह इन्हें विदेश ले गयी। विदेश पहुंचकर इनमें से जिन्होंने होड़ में भागते हुए, दूसरों को गिराकर, धनपतियों की जमात में जगह बना ली, आज उन्हीं को मातृभूमि की याद सता रही है।

जब कोई सेठ "अपना देश-अपना देश" कहकर अपनी देशभक्ति के बड़े-बड़े दावे कर रहा हो, तो समझ लेना चाहिए कि वह अपने बाजार की चिंता करते हुए उस पर अपनी दावेदारी प्रकट कर रहा है। प्रवासी भारतीय सम्मेलन में ढोलकिया नाम के एक सज्जन ने कहा कि किसी भी प्रवासी भारतीय का दिल चीर के देखा जाय तो उसमें भारत का नक्शा नजर आयेगा। ठीक ही कहा ढोलकिया जी ने। आखिर निगाहें तो यहां के बाजार पर भी गड़ी ही हैं। इसीलिए उनके दिल में हिन्दुस्तान का नक्शा रहता है, यहां के लोग नहीं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सर्वेश्वर ने कहा था 'देश कागज पर बना नक्शा नहीं होता'। लेकिन दुखों के सागर में बनी लकदक मीनारों में रहने वालों के लिए वह सिर्फ नक्शा होता है, वह सिर्फ बाजार होता है।

जब ये खास प्रवासी भारतीय अपने समाज को उसके दुखों, तकलीफों में छोड़कर अमीर बनने के लिए विदेश भाग गये थे, तब इनकी देशभक्ति सुषुप्तावस्था में चली गयी थी। अब, जबकि पूरे विश्व के पैमाने पर मंदी की मार से मुनाफाखोर नये-नये बाजार तलाश रहे हैं, तो इन्हें भी अपना वतन याद आ रहा है एक सुरक्षित बाजार के रूप में। ये रवि टिक्कू, हिन्दुजा, स्वराज पाल जैसे बड़े मगरमच्छ तो नहीं बन पाये, लेकिन इनकी मुनाफे की हवश उनसे कहीं कम नहीं है। अपनी हैसियत के अनुसार वे इस देश में पूंजी निवेश करने को आतुर हैं। उदारीकरण-निजीकरण के घोड़े पर सवार भारत सरकार इनके लिए जगह बना रही है। जब भारत का "स्वदेशी" पूंजीपति वर्ग विदेशी पूंजी के साथ गठबंधन कर भारतीय बाजार को मिल-बांटकर लूटने की योजनाओं को अंजाम दे रहा हो तो प्रवासी भारतीय क्यों पीछे रहें? टुटपुंजिये ही सही, हैं तो वे धनकुबेरों के बिरादर ही। ऐसे तो केन्द्र में कोई भी सरकार होती तो वह प्रवासी भारतीयों को पूंजी निवेश के लिए आमंत्रित ही करती। लेकिन भाजपा की बात कुछ और है। प्रवासी भारतीयों के एक अच्छे खासे हिस्से को संघ गिरोह का "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" का नारा बहुत आकृष्ट कर रहा है। प्रवासी भारतीयों द्वारा आर.एस.एस. को दिये गये चन्दे की विशाल राशि की खबर पिछले दिनों आयी ही थी। स्वयंभू "राष्ट्रभक्त" भाजपा का प्रवासी "राष्ट्रभक्तों" के लिए बांहें फैलाना स्वाभाविक ही है। बहरहाल बाजार के उपासकों के इस साधना शिविर, जिसे प्रवासी भारतीय सम्मेलन नाम दिया गया, में सभी ने अपने दिल चीर कर दिखाये। कसमें-वादे हुए। जनता ने इस तमाशे को देखा। फिल्म का यह अभी शुरुआती हिस्सा है। आगे-आगे देखिये होता है क्या? लेकिन यह तो पता ही चल गया कि अपने प्रधानमंत्री के दिल में कौन बसता है।

संभलो भाइयो! अभी भी देर नहीं हुई है

दुनिया की लुटेरी व्यवस्थाओं के किसी सिद्धान्तकार ने कहा है कि अगर देश की जनता किसी शासक वर्ग के अत्याचार, लूट-खसोट से तंग आ चुकी हो और उस देश के शासन को अपनी जर्जर हो चुकी सत्ता को बनाये रखना हो तो उसे तीन काम करना चाहिए। पहला, सरहद पर आक्रमण का भय पैदा करना चाहिए। जिससे जनता के बीच जंगी जुनून बना रहे। दूसरा, देश में सांप्रदायिक-धार्मिक उन्माद फैलाये रखना चाहिए तथा तीसरा, यह हौव्वा खड़ा करना चाहिए कि देश घनघोर आर्थिक संकट से जूझ रहा है। भाजपा की अगुवाई वाली केन्द्र सरकार इन तीनों कामों को कुशलता के साथ अन्जाम दे रही है। यही नहीं संघ परिवार के सभी मुखौटे हिटलर के इस सूत्र को भी हिटलर से भी अधिक कुशलता से लागू कर रहे हैं कि 'किसी झूठ को सौ बार कहो तो वह सच हो जायेगा।'

आम जन की आबादी का एक बड़ा हिस्सा संघ परिवार के आक्रामक झूठे प्रचार के असर में हिन्दुत्व के सुर में सुर मिला रहा है। उसको भी यह लगने लगा है कि भूख, बेकारी, छंटनी, तालाबन्दी, महंगाई, सूखा-बाढ़ की समस्याओं का कारण सरहद के आक्रमणकारी और देश के गद्दार मुसलमान हैं।

संघ परिवार के इस झूठ को सच मान बैठे लोगों से हम कहना चाहेंगे कि क्या यह सोचने का मसला नहीं है कि जब देश की 'आजादी' के पचपन सालों में किसी दूसरे देश ने हमारे ऊपर राज नहीं किया तो फिर आम जनता की तबाही के लिए कौन जिम्मेदार है। क्या यह सच नहीं कि जनता के लिए आंसू बहाने वाली सरकारों और इनके आकाओं ने अंग्रेजों के जोरो-जुल्म, लूट-मुनाफे को भी पीछे छोड़ दिया है। पिछले दस बारह सालों से तो वे मेहनतकशों के हिस्से में बचे जूठन को भी खंगालने की तैयारी में लगे हुए हैं। पिछले दशक से तो अमीरी-गरीबी की खाई सुरक्षा के मुंह की तरह बढ़ती ही गई है। यह जगजाहिर आंकड़ा है कि दुनिया के 365 लोगों के पास दुनिया की सम्पत्ति का आधा हिस्सा इकट्ठा हो चुका है। पिछले पचास सालों में देश के मुट्ठी भर पूंजीपति घरानों की सम्पत्ति में पांच सौ से छह सौ गुना बढ़ोत्तरी हुई है। देश में तरह-तरह के कारों के मॉडल, टी.वी., फ्रीज ऐय्याशी के सामानों के अनगिनत मॉडल आ चुके हैं। लेकिन इन सबको बनाने वाली मजदूर आबादी इन परजीवियों को चारा देने वाली गरीब किसान आबादी और दूसरे मेहनतकश तबके लगातार दरिद्रता के गर्त में जा रहे हैं। क्या यह सच नहीं कि हर हिन्दू के नीचे एक किसान एक मजदूर बैठा है। अगर इस देश का मजदूर किसान तबाह हो रहा है तो इस तबाही के बारे में हिन्दुत्व के ठेकेदार चुप क्यों बैठे हैं?

साथियों, हमें भूलना नहीं होगा कि चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, दलित हो या ईसाई, अगर वह गरीब-मजदूर-मेहनतकश है तो उसके लिए है वही झुग्गियां, दवा के नाम पर ई.एस.आई. का सैकड़ों लोगों की लाइन वाला अस्पताल, या झोलाछाप डाक्टर, स्कूल के नाम पर सिर्फ दस्तखत कराने वाले स्कूल और दूसरी तरफ है परजीवियों की जमात, जिनके लिए सारे सुख-संसाधन हैं। ये भी हिन्दू-मुसलमान-सिख-ईसाई सभी धर्मों में हैं। हालांकि यह भी गौर करने की बात है कि देश के अधिकांश लुटेरे पूंजीपति हिन्दू ही हैं। फिर बहुसंख्यक हिन्दू आबादी क्यों तबाह-बरबाद है?

अब आइये आतंकवाद और सरहद पार के खतरे को लें। इस बात से कौन इनकार करेगा कि इस देश में आतंकवादी गतिविधियां हो रही हैं। इन्हें सरहद पार से मदद भी मिल रही होगी। लेकिन क्या यह भी भद्दा मजाक नहीं कि इन्हें रोकने का कार्यभार उन लोगों ने ले रखा है जिनमें पहले से ही बहत्तर छेद हैं। अगर आतंक और हिंसा के जरिए अपनी मर्जी को दूसरों पर थोपना आतंकवाद है तो इस देश की राज्यसत्ता और उसे चलाने वाले लोग सबसे बड़े आतंकवादी हैं। जरा देश की राजनीतिक सत्ता सम्भालने वालों के चेहरे तो देखिये- चोर-उचक्के, मवाली, बटमार, पाकेटमार, जुआरी, बलात्कारी, हत्यारे, माफिया, कालाबाजारिये नायक बना दिये सिनेमाई भांड- यही तो आज देश के भाग्यविधाता बने बैठे हैं। क्या इनके बूते आतंकवाद का मुकाबला किया जा सकता है। सरहद पर तो मजदूरों-किसानों के बेटे गोलियां खा रहे हैं और देश के 'भाग्यविधाता' देशभक्ति का मेडल लगाये घूम रहे हैं।

जाहे पड़ोसी देश के हमले से देश की रक्षा का सवाल हो या जनता को निशाना बनाने वाले आतंकवाद को चुनौती देने का सवाल हो- देश की आम मेहनतकश जनता की क्रान्तिकारी एकजुटता ही कारगर हो सकती है। देशभक्ति का जुनून भड़काकर, मजहबी आधार पर खूनखराबा मचाकर, जनता को खण्ड-खण्ड बांटकर, राजकीय आतंक का कहर बरपाकर न देश अखण्ड रह सकता है और न ही अवाम की जिन्दगी महफूज रह सकती है। इसलिए लोगो! फर्जी देशभक्तों से सावधान। पहचानो, देशभक्तों के मुखौटों के पीछे छिपे असली देशद्रोही-मानवद्रोही चेहरों को। वरना किसी आसमानी ताकत से कयामत आये न आये, जमीनी ताकतें कयामत ढा देंगी। संभल जाओ भाइयो! अभी देर नहीं हुई है।

● अजय

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मवांदपुर, मऊ।